"सारे धर्म समान हैं"
की वास्तविकता

लेखक–
मुहम्मद इक़बाल मुल्ला

अनुवाद– डॉ० रफ़ीक़ अहमद

आमतौर पर धर्मों के बारे में जब बात होती है तो यह बात ज़रूर कही जाती है कि सारे धर्म सच्चे हैं। कोई एक धर्म सच्चा हो और दूसरे धर्म सच्चे न हों, ऐसा सम्भव नहीं है। इस सम्बंध में यह बात भी कही जाती है कि धर्मों के नाम अलग-अलग ज़रूर हैं, परन्तु उन सबकी मंज़िल एक ही है, अतः इनमें से किसी भी धर्म को मनुष्य स्वीकार करले तो वह मंज़िल तक पहुंच जायेगा।

जब सभी धर्म सच्चे हैं तो किसी एक धर्म को सच्चा कहना दूसरे धर्मों को सच्चा न कहना उचित नहीं है। जो व्यक्ति जिस धर्म पर चल रहा है, चलता रहे और दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छा और पसन्द के धर्म पर चलने का अधिकार दे और उसके धर्म को भी सच्चा माने और यक़ीन रखे कि उसके धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मो पर चलने वाले भी मुक्ति (नजात) के पात्र हैं। इसीलिए किसी धर्म के सत्य होने पर आग्रह करना और लोगों को उस धर्म के स्वीकार करने का आमन्त्रण देना, समाज में असहमति और बिखराव पैदा करेगा। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न होगी और लोगों में धार्मिक नफ़रत और दूरी बढ़ेगी।

जो लोग यह दृष्टिकोण रखते हैं, उन्होंने धर्मों के बारे में गम्भीरता और गहराई से विचार नहीं किया। यह एक मादण्ड और सतही सोच है। इस बात से निश्चित रूप से सहमत होना चाहिये कि मात्र धर्म के अलग-अलग होने की बुनियाद पर लड़ना, झगड़ना कदापि उचित नहीं है।

धर्मों के माानने वालो के बीच इन्सानों के लिए प्रेम, भाईचारा, सम्मान और सहानुभूति होनी चाहिये। यह बात भी सही है कि एक ऐसे समाज में जहां एक से अधिक धर्मों के अनुयायी रहते हों, धर्म के आधार पर टकराव, घृणा, दंगा व फसाद विनाशकारी होता है। उनके बीच सहनशीलता और सौहार्द का माहौल अवश्य होना चाहिए।

प्रश्न यह है कि क्या उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ''सभी धर्म समान हैं'' को स्वीकार करना अनिवार्य है, चाहे दृष्टि एवं तर्क तथा ज्ञान और विवेक के आधार पर कोई व्यक्ति सभी धर्मों को सही न समझता हो ? हर प्रकार के पक्षपात से ऊपर उठकर दोटूक और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के नतीजे में जो भी सत्यता और वास्तविकता सामने आती है, क्या उसको स्वीकार करना ज़रूरी नहीं है?

इस विषय में यह पहलू भी महत्वपूर्ण है कि धर्मों के बीच सत्य की खोज़ का उद्देश्य यह नही है कि किसी एक धर्म को श्रेष्ठ और महान क़रार देकर दूसरे धर्मों को कमतर और तुच्छ समझा जाये, बल्कि सभी धर्मों के सम्मान से साथ-साथ यह मालूम करना है कि क्या उन सबकी बातें सही है ? या केवल एक धर्म ऐसा है जिसकी सत्यता बेदाग़ है ?

यदि तर्क, बुद्धि एवं विवेक की बुनियाद पर किसी एक धर्म का सत्य होना सिद्ध हो जाये तो उसकी सांसारिक सफलता और परलौकिक मुक्ति की स्पष्ट मांग यह है कि

इन्सान उसे स्वीकार कर ले और अपना जीवन उसी के अनुसार व्यतीत करे।

विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच मधुर सम्बंध, सौहार्द और धार्मिक उदारता एवं सदभाव के लिए ज़रूरी है कि–

- हर व्यक्ति को आस्था और धर्म के चुनाव की स्वतन्त्रता प्राप्त हो और इस सम्बंध में उस पर कोई ज़ोर और ज़बरदस्ती न हो।
- धर्म के आधार पर किसी के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार न किया जाये।
- अपने धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के मानने वालों के साथ भाईचारा एवं उदारता अपनाई जाये।
- दूसरों धर्मों के धर्म–गुरुओं और महात्माओं विद्वतियों तथा धार्मिक ग्रन्थों और पूजा स्थलों के सम्मान का पूरा ख्याल रखा जाये।

ध्यान देने योग्य बातें–

क्या सारे धर्म सच्चे हैं या ईश्वर की ओर से मानवजाति की हिदायत और मार्गदर्शन के लिए एक ही धर्म प्रारम्भ में दिया गया था ? यह मूल प्रश्न है, मात्र बौद्धिक और दार्शनिक प्रश्न नही है। इसका सम्बंध हर इन्सान की भौतिक सफलताओं और मरणोत्तर जीवन में उसकी मुक्ति और नजात से भी है। धर्म हर इन्सान की मौलिक और महत्वपूर्ण ज़रूरत है। इन्सान की मूल आवश्यकताओं जैसे–हवा, पानी, रोशनी, गर्मी और ज़मीन में फसल उगाने की क्षमता आदि को ईश्वर ने स्वयं पूरा

किया है, इससे बेहतर कोई दूसरी व्यवस्था हो ही नहीं सकता थी, इन आवश्यकताओं को ईश्वर ने किसी और के या स्वयं इन्सानों को नहीं सौंपा। तो क्या ईश्वर ने इन्सान की सबसे महान और महत्वपूर्ण ज़रूरत यानी मार्गदर्शन की व्यवस्था स्वयं नहीं किया होगा? क्या उसने हिदायत और मार्गदर्शन की व्यवस्था किसी इन्सान या इन्सानी समुदायों के हवाले किया है? क्या इन्सान इस स्थिति में है कि वह अपने और दूसरे इन्सानों के लिए धर्म प्रस्तुत करे।

मान लीजिये ईश्वर द्वारा दिये गये धर्म को छोड़कर किसी ने अपने पसन्दीदा धर्म या अपने पूर्वजों के धर्म का अनुपालन कर पूरा जवीन व्यतीत किया, परन्तु मरणोत्तर जीवन में उसे पता चला कि वह ईश्वर की हिदायत और मार्गदर्शन से सांसारिक जीवन में वंचित र गया और अब उसे असफलता और नरक की भयानक यातना का खतरा सामने है, तो उस समय क्या हो सकता है ? यह अपने बाप-दादा के धर्म से मात्र भावनात्मक और व्यहारिक सम्बंधों का मसला नहीं है बल्कि अपने जीवन के बहुमूल्य और क़ीमती नेमत होने के एहसास को पाने, और सत्य मार्ग में अत्याधिक तरक़्क़ी, सफलता और परलौकिक जीवन में शास्वत मुक्ति पाने का मसला है, प्रत्येक व्यक्ति की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और नाज़ुक ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी व्यक्तिगत पसन्द और नापसन्द और अपने पूर्वजों के प्रेम में किसी के धर्म पर चलते रहने को पर्याप्त न समझे बल्कि ईश्वर के भेजे हुये सच्चे धर्म की खोज करे और उसे

पाने के बाद अपने जीवन में बेझिझक ग्रहण कर लें।

इन्सान आज सोच-विचार कर सकता है और अपनी भलाई में कोई निर्णय ले सकता है। सत्यता और सच्चाई के लिये कोई कुर्बानी देना पड़े, सांसारिक बिलासताओं और राहतों से वक्ती तौर पर वंचित होना पड़े तो उसका भी फैसला कर सकता है, लेकिन जब मौत आयेगी और उसके बाद दूसरी दुनिया में ऑख खुलेगी तो उसे वहां सोच-विचार करने या अपनी भलाई के लिए कोई निर्णय लेने का अवसर कदापि न मिलेगा। यह जीवन एक बार मिला है, इसलिए आपको सोच-विचार तथा उचित निर्णय लेने का बहुमूल्य और बेहतरीन अवसर प्राप्त है। इस अवसर को छोड़ देना अपने आपको तबाही और बर्बादी में ढकेलना है।

पाठकों को विचार-विमर्श का आमंत्रण देते हुये निवेदन करना है कि यह लेख वास्तव में जीवन सम्बंधी मूल प्रश्नों और उनके उत्तरों के सन्दर्भ से धर्मों का तुलनात्मक एवं विस्तृत अध्ययन है। इनमें से किसी बात से किसी भी धर्म की तौहीन या अपमान करना मक़सद नहीं है। लेखक समस्त धर्मों के प्रति सम्मान की भावना रखता है।

जिस धर्म की भी यह धारणा है कि मात्र वही सत्य है, उसकी धारणा को बुद्धि एवं विवेक तथा ज्ञान और तर्क की कसौटी पर परखना चाहिये। ईश्वर की ओर से प्रदान की गयी सत्यता को स्वीकार करना प्रत्येक व्यक्ति की सफलता और मुक्ति के लिये नितान्त आवश्यक है। बुद्धि एवं विवेक की रोशनी में यही रवैया उचित हो सकता है। यह किसी भी धर्म के मात्र श्रेष्ठ एवं महान या कमतर या तुच्छ होने का मामला नहीं है।

धर्म की परिभाषा

धर्म को परिभाषित करने के लिए ''सर्वधर्म समभाव'' के समर्थकों तथा कुछ बुद्ध जीवियों और विद्वानों ने निम्नांकित बातें कही हैं–

1– धर्म व्यक्ति का अध्यात्मिक अनुभव है।

2– धर्म सत्य की खोज है।

3– धर्म शाश्वत सत्य, सर्वोच्च वास्तविकता या अन्तिम सच्चाई की प्राप्ति के लिए व्यक्ति के प्रयास का नाम है।

इनमें से कुछ परिभाषाओं का भाव यह है कि धर्म का अस्तित्व, ईश्वर की कल्पना, वही (ईशवाणी) और ईश्वरीय सन्देश को पहुँचाने वाले सन्देष्टा, रसूल और पैगम्बर के बिना भी हो सकता है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या ईश्वरीय मार्गदर्शन के बिना जीवन के लिए पूर्ण मार्गदर्शन मिल सकता है? क्या उपरोक्त परिभाषा के द्वारा, आस्था, उपासना, आचरण और जीवन–व्यवस्था के सिद्धान्त बनाये जा सकते हैं।

प्रश्न यह भी है कि ईश्वर को छोड़कर यह सब कौन करेगा ? विभिन्न लोगों के अध्यात्मिक अनुभवों और सत्य की खोज की कोशिशें निश्चित रूप से भिन्न–भिन्न परिणाम देंगी। उनमें सत्य और असत्य को जांचने का मापदन्ड क्या होगा? वह कसौटी क्या है, जिस पर परख कर कोई कह सके कि यह सत्य और हक है इसलिए इसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

वास्तविकता यह है कि जिन लोगों ने भी अपने तौर

पर अध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किये हैं, और सत्य की खोज़ की, उनमें कितने ही विभेद और विरोधाभास पाये जाते हैं, क्या वह सब एक ही समय में सही और स्वीकार करने योग्य हो सकते हैं ?

मानव जीवन के लिए धार्मिक आस्था बनाना उपासना-पद्धति और जीवन-व्यवस्था के सिद्धान्तों एवं आदेश और नियमों को प्रतिपादित करना इन्सानों के लिए असम्भव है। इन्सानों ने अतीत में ऐसे प्रयास किये हैं। परन्तु वे सदैव असफल रहे हैं। इसकी सबसे बड़ी दलील यह है कि इन्सानों ने अपनी सफलता और मुक्ति के लिए उसने विचार एवं कर्म के अनगिनत रास्ते बना लिये हैं।

उक्त शब्दावली के द्वारा धर्म की जो परिकल्पना सामने आती है और उसका अनुपालन करने वालों के जीवन का अवलोकन जो कुछ बताता है वह यह है कि-

धर्म व्यक्तिगत जीवन के सीमित दायरे में ईश्वर का स्मरण, पूजा-पाठ, उपासना की कुछ परम्परायें और नैतिक शिक्षाओं पर अमल करने का नाम है। व्यक्तिगत जीवन के शेष विस्तृत परिधि में और सामूहिक जीवन में, जहां ईश्वर की ओर उसकी शिक्षाओं और मार्गदर्शन की सबसे अधिक आवश्यकता है, वहां ईश्वरीय मार्गदर्शन लुप्त है और उसका दूर-दूर पता नहीं। इन महत्वपूर्ण सीमाओं में उसके मार्गदर्शन एवं शिक्षाओं से बग़ावत करके इनसानों के विचारधाराओं और दर्शनों के तहत व्यक्ति और समाज का जीवन व्यतीत हो रहा है। स्पष्ट है कि ऐसे

सीमित धर्म और ईश्वर की ज़रूरत ही क्या है ? यह धर्म की सेकुलर धारणा है। इस धार्मिक स्वरूप के अन्तर्गत ईश्वर को मान कर व्यवहारिक जीवन के अत्यन्त विस्तृत दायरों में उसकी बग़ावत और अवहेलना होती है जिसके नतीजे में इन्सान भयानक विरोधाभास और कपटाचार का शिकार हो जाता है। इसलिए भयानक परिणाम आज इन्सान अपने जीवन के प्रत्येक विभागों में वह भुगत रहा है। यह कैसे सम्भव है कि ईश्वर मात्र पूजा–पाठ की हद तक तो ईश्वर हो परन्तु शेष व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन में वह कहीं भी इन्सान का ईश्वर न हो या इन्सान उसका बन्दा न हो और उसकी खुदाई से स्वतन्त्र हो।

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न–

1– क्या ईश्वर ने खुद कहा है कि इन्सान उसे और धर्म को पाने के लिए अध्यात्मिक अनुभव करे या सत्य की खोज या शाश्वत सत्य, सर्वोच्य सत्य या अन्तिम सच्चाई को पाने की कोशिश में जीवन व्यतीत करे। इस कोशिश में वह जिस नतीजे पर पहुँचेगा क्या उसे धर्म कहा जायेगा और उस धर्म को ईश्वर की मंजूरी भी प्राप्त होगी। क्या ईश्वर ने इन्सान को धर्म प्रदान करने मेंअसमर्थता और विवशता ज़ाहिर की है।

2– पृथ्वी पर सर्वप्रथम मानव हज़रत आदम थे, उनकी पत्नी हव्वा भी उनके साथ थीं। इस तथ्य को विश्व के महान धर्मों के अनुयायी स्वीकार करते हैं। क्या हज़रत आदम ने खुद धर्म बना लिया था या हज़रत आदम अलै० ईश्वर की ओर से दी गयी हिदायत और

मार्गदर्शन के साथ पृथ्वी पर उतारे गये थे। यह हिदायत और मार्गदर्शन केवल उनके लिए था या समस्त मानव जाति के लिये ईश्वर का भेजा हुआ पहला धर्म था।

3- क्या ईश्वर ने यह बात बताई है कि उसने बहुत सारे धर्म इन्सानों को प्रदान कियें हैं और ये सब अपने मूल मतभेदों और विपरीतताओं और विरोधाभासों के बावजूद एक ही समय में सही है? क्या उसने बताया है कि बहुत सारे धर्मों में किसी विशेष धर्म की यह स्थिति ईश्वर के नज़दीक नहीं है कि मात्र अकेला वही सत्य है?

4- धर्म बनाने की ज़िम्मेदारी किस पर है ? इन्सान यदि खुद ही धर्म बना लेता है तो फिर ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है? कुछ धर्मो में तो ईश्वर की कोई कल्पना भी नहीं पाई जाती। क्या ईश्वरीय कल्पना के बग़ैर भी कोई धर्म, धर्म कहलाने का पात्र है? इन्सान पर धर्म की रचना की ज़िम्मेदारी किसने डाली है ?

5- मानव इतिहास में यह बात रिकार्ड की गयी है कि विभिन्न कालों और समुदायों में ऐसे नेक सत्यवादी और चरित्रवान महापुरुष गुज़रें हैं, जिन्होंने अपने आपको ईश्वर का सन्देश वाहक और सन्देष्टा बताया,

ईश्वर का प्रतिनिधि होने का एलान किया, ईश्वर और उसके अस्तित्व और गुणों के बारे में और मरणोत्तर जीवन, स्वर्ग, नरक और इन्सान की सांसारिक सफलता और पारलोकिक मुक्ति के बारे में साफ और स्पष्ट शिक्षायें प्रस्तुत कीं। उन चरित्रवान इन्सानों ने भी यह बताया कि यह अपनी ओर से कोई संदेश और शिक्षायें नहीं देते हैं, बल्कि जो कुछ प्रस्तुत किया है वह सब ईश्वर की ओर से है।

इन नबियों और पैगम्बरों ने ईश्वरीय शिक्षायें और निर्देशों पर सब से पहले स्वयं अनुसरण करके अपनी कौमों के सामने उदाहरण प्रस्तुत किया। यह नबी और पैगम्बर दुनिया की विभिन्न कौमों में और विभिन्न कालों में निरन्तर आते रहे। आज से लगभग एक हज़ार चार सौ पचास वर्ष पूर्व अरब में हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर पैगम्बरों का सिलसिला समाप्त हुआ। अतः मुहम्मद सल्ल० ईश्वर के अन्तिम संदेष्टा हैं।

इन सारे नबियों और पैगम्बरों की शिक्षाओं और मार्गदर्शन में कोई मतभेद और विरोधाभाष नहीं पाया गया। ये सभी सदैव निःस्वार्थ भावना के साथ इन्सानों की भलाई तथा कल्याण और उनकी नजात और मुक्ति के लिये प्रयास करते रहे। इन पवित्र और पावन हस्तियों को जैसा कि उनका दावा रहा है, ईश्वर का सन्देश और मार्गदर्शन फरिश्तों के माध्यम से वही

(प्रकाशना) के रूप में मिलता रहा।

6- ईश्वर अत्यन्त दयावान, कृपाशील और इन्सानों से अपार प्रेम करता है। इन्सान को उसने अपनी समस्त सृष्टियों में सबसे सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, जगत की अनगिनत चीज़ों को इन्सानों की सेवा में लगा लिया हो। नियुक्ति किया, इन्सान की समस्त छोटी बड़ी हर भौतिक ज़रूरतों को अत्यन्त तत्वदर्शिता के साथ पूरा किया है और प्रत्येक क्षण पूरा कर रहा है। हिदायत और मार्गदर्शन इन्सान की सबसे महान और मौलिक आवश्यकता है। प्रश्न यह है कि क्या उस दयावान ईश्वर ने इन्सानों की दूसरी आवश्यकताएं तो पूरी कीं लेकिन इस मौलिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं की ?

सत्य धर्म की विशेषतायें :-

धर्मों के मध्य सत्य धर्म की खोज के दौरान निम्न विशेषताओं का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

● वह धर्म ईश्वर की ओर से हो। अगर वह ईश्वर की ओर से है तो स्वयं उस धर्म का दावा भी यही होना चाहिये। उसके मूल ग्रन्थ/ग्रन्थों में यह बात स्पष्ट रूप से वर्णित होना चाहिये कि यह ईश्वर का भेजा हुआ धर्म है, न कि किसी इन्सान का बनाया हुआ। इसी आधार पर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि ऐसे ईश्वरीय धर्म का किसी व्यक्ति से सम्बद्ध नहीं हो सकता। यदि वह किसी व्यक्ति से सत्य या असत्य रूप से सम्बद्ध किया गया हो, या उसका संस्थापक कोई व्यक्ति हो तो वह ईश्वरीय

धर्म नहीं हो सकता।

- धर्म के इस दावे के बाद दलीलों की रोशनी में इस दावे पर विचार करके किसी परिणाम पर पहुंचा जा सकता है। यदि कोई धर्म ईश्वर द्वारा अवतरित है और इन्सान उसका इनकार करता है तो वह ईश्वर का भी इनकार करता है और अपने लिए एक भयानक नाकामी को दावत देता है।

- धर्म मानव स्वभाव और बुद्धि एवं विवेक के विरूद्ध न हो। वह धर्म प्राकृतिक एवं स्वाभाविक हो और बुद्धि एवं विवेक की कसौटी पर पूरा उतरता हो। उसके मौलिक सिद्धान्त कभी परिवर्तित न हुये हों बल्कि वह प्रत्येक काल और प्रत्येक मानव समुदाय के लिये समान रहे हों। उसकी शिक्षायें अस्वाभिक, विवेकहीन और तर्कहीन न हों जैसे दो या दो से अधिक ईश्वर, खुदाई (ईश्वरत्व) में साझी बना लिये हों या ईश्वर की सन्तान का होना स्वीकार कर लिया जाये, या ईश्वर के थक जाने की बात या उसके कुश्ती लड़ने की बात आदि। वह पौराणिक कथाओं और कहानियों का संग्रह न हो। उसकी शिक्षायें और उसके मार्गदर्शन का सम्बंध आज के मानव जीवन और उसकी समस्याओं से हो। उसकी शिक्षायें और मार्गदर्शन, व्यवहारिक और अनुसरणीय भी हों। वह मात्र रीति-रवाज और पूर्वजों से चली आने वाली कुछ परम्पराओं का संग्रह न हो।

- उसके मूल स्रोत या धर्म ग्रन्थ और धर्म ग्रन्थ प्रस्तुत

करने वाली हस्ती दोनों प्रमाणित हों और परिवर्तन तथा बदलाव से सुरक्षित रहे हों। उनके बारे में कभी यह संदेह न किया गया हो कि मानव इतिहास में ये थे या नहीं थे और उनकी बातें मात्र कहानियां हैं या वास्तविकता से भी उनका कोई सम्बंध है। इसी प्रकार उस धर्म का सन्देश और शिक्षायें, उसे प्रस्तुत करने वाली हस्ती के जीवन ही में सुरक्षित कर ली गयी है। ऐसा न हो कि धर्म को प्रस्तुत करने वाली हस्ती के दुनिया से प्रस्थान करने के कई सौ वर्ष के उपरान्त उसके ग्रन्थ, शिक्षाओं और सन्देश को मात्र स्मरण के आधार पर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया हो। उसके परिणाम स्वरूप अनगिनत मौलिक और आंशिक मतभेद उत्पन्न हो गये हों और पूरा मामला ही संदेहास्पद और अविश्वसनीय हो गया हो।

● धर्म ईश्वर और बन्दे का मात्र निजी सम्बंध बनकर रह न जाये कि व्यक्तिगत जीवन के एक अत्यन्त सीमित भाग में तो ईश्वर की याद, पूजा और उपासना की जाये, लेकिन जीवन के शेष भागों में ईश्वर की उपासना से आज़ाद हों। जैसा कि आज का इन्सान कर रहा है। वह अनगिनत विचारधाराओं और दर्शन शास्त्रों तथा मानव निर्मित धर्मों व विचारधाराओं के कारण भटक गया है। उसका परिणाम है कि वह अपने जीवन में सुख-शान्ति हार्दिक संतुष्टि और आत्म-शान्ति, न्याय, इन्साफ, निर्माण एवं विकास तथा भौतिक सुख-शान्ति के लिये तरस रहा है। जीवन की ये सर्वोच्च मान्यतायें और नेमतें, इन्सान के

लिये एक मरीचिका बनकर रह गयी हैं।

आज उसका जीवन एक प्रकार का नरक बन कर रह गया है। प्रश्न यह है कि क्या ईश्वर ऐसा हो सकता है कि वह मात्र मान लेने और पूजाग्रहों में जाकर थोड़ी देर के लिये स्मरण कर लेने के अतिरिक्त हमारे किसी काम न हो। क्या यह भयानक विरोधाभास नहीं है कि ईश्वर को मानो लेकिन अपने जीवन में कहीं भी ईश्वर की किसी बात को न मानो, बल्कि मनमानी करते रहो। मानव-निर्मित दर्शनशास्त्रों, विचारधाराओं और धर्मों के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करते रहो। शैतान ने इन्सान को इस प्रकार ईश्वर पर विश्वास और आस्था रखने का इत्मीनान दिलाकर पूरे जीवन में ईश्वर का अवज्ञाकारी और विद्रोही बना दिया है।

सत्य धर्म में मात्र विश्वास, उपासना की पद्धति और नैतिक शिक्षायें ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जीवन के लिये सैद्धान्तिक मार्गदर्शन होना चाहिये। इसके बाद ही इन्सान का पूरा जीवन ईश्वर की उपासना में व्यतीत हो सकेगा। ईश्वर की उपासना और सम्पूर्ण जीवन में उसकी पैरवी और आज्ञापालन मानव जीवन का उद्देश्य है।

● धर्म मानव जीवन की समस्याओं को हल करने की क्षमता रखता हो। इतिहास में उसका व्यवहारिक उदाहरण भी पाया जाता हो। अर्थात उसके मूल विचारों एवं शिक्षाओं के आधार पर व्यक्ति, परिवार और समाज का निर्माण किया गया हो तथा इतिहास में उसका रिकार्ड प्रमाणित रूप से सुरक्षित किया गया हो। धर्म की शिक्षायें विशुद्ध

सैद्धान्तिक और व्यवहारिक हों। जीवन की समस्याओं से वह भागता न हो। बल्कि उनके निवारण के लिये मूल सैद्धान्तिक मार्गदर्शन देता हो। वह सन्यास की शिक्षा देने वाला न हो। उसमें आदर्श जीवन का मानचित्र, बीवी बच्चों, परिवार और समाज से कट कर न हो, बल्कि उन सबके अधिकारों को वह स्वीकार करता हो। उनके सम्बंध से दायित्यों की पूर्ति को वह ईश्वर की प्रसन्नता का साधन मानता हो।

- वह धर्म, व्यक्ति और समाज में एक बेहतरीन समन्वय स्थापित करता हो। वह व्यक्ति को इतना महत्व न देता हो कि जिसके नतीजे में समाज का नुकसान हो और न समाज को इतना महत्व देता हो कि जिसके नतीजे में व्यक्ति को नुकसान हो जाये। व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के लिये सहायक और मददगार बनें। व्यक्ति का निर्माण और उसका विकास समाज के बग़ैर सम्भव नहीं है।
- उस धर्म में पुरोहितवाद न हो यानी इन्सान का सीधा सम्बंध अपने ईश्वर से है। इन्सान और ईश्वर के मध्य कोई ऐसी शख्सीयत पंडित, पुजारी, पीर या प्रीस्ट आदि की न हो कि जिसकी उपेक्षा करके सीधा ईश्वर से सम्बंध जोड़ा न जा सके।
- उस धर्म की शिक्षाएं सार्वभौतिक और सर्वव्यापी हों। वह किसी क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, भाषा और नस्ल के आधार पर इन्सानों को सम्बोधित करने वाला न हो, बल्कि दुनिया के समस्त मानव जाति को समान रूप से सम्बोधित करता हो।

महिला और पुरुष के मध्य जो स्वाभाविक अन्तर है, उसका ख्याल रखता हो लेकिन लिंग-भेद न करता हो।

- उस धर्म में (विशेषरूप से उसके ग्रन्थों) और उसके महान व्यक्तित्वों के जीवन में कोई अनैतिक और अशलीलता की बातें न पाई जाती हों। अश्लील कहानियों और अश्लील बातों से उसका जीवन बिल्कुल स्वच्छ एवं बेदाग़ हो।

- उसमें मतभेद और विवाद न पाया जाता हो। उसके ग्रन्थ, एवं उसके महान व्यक्तित्वों के जीवन एवं चरित्र तथा शिक्षाओं में सामन्जस्य पाया जाता हो, यह सब मिलकर परस्पर सहमत और संगठित होकर एक ही बात प्रारम्भ से अन्त तक कहते हों।

- वह समस्त मानव जाति को एक दृष्टि से देखता हो। जन्म, रंग, वंश, क्षेत्र और भाषा के आधार पर इन्सानों को कृतिम रूप से बांट कर घृणा तथा फितना व फ़साद की अग्नि में झुलसाने वाला न हो।

- उसके नज़दीक न्याय का मापदन्ड सभी के लिये समान हो और उस सम्बंध से स्वामी और सेवक शक्तिशाली और दुर्बल, धनी और निर्धन सबके लिए समान रवैया अपनाता हो।

धर्मो में समानतायें-

धर्मों में पारस्परिक मतभेद और अन्तर पाये जाते हैं। जिन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। परन्तु एक

वास्तविकता यह भी है कि धर्मों में सामान्य रूप से ईश्वर की कल्पना, नैतिक शिक्षायें और कुछ मान्यतायें समान हैं। इसी समान पहलू को सामने रखकर आमतौर पर सरसरी अन्दाज़ में यह धारणा बनाई जाती है कि सारे धर्म सत्य हैं। इस महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करने की आवश्यकता है।

ईश्वर की कल्पना सभी धर्मों में मूलरूप में समान हैं परन्तु विस्तृत और गहराई में बड़ा मतभेद और अन्तर पाया जाता है, जिसके कारण यह धारणायें एक जैसी नहीं रहतीं, बल्कि एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न एवं विपरीत हो जाती हैं। कुछ धर्म तो ऐसे भी हैं, जहां ईश्वर का इक़रार और उसकी आवश्यकता को स्वीकार ही नहीं किया गया है। क्या एक ही समय में उन सभी को सही और सच्चा कहा जा सकता है ?

जो नैतिक शिक्षायें और मान्तायें, सभी धर्मों में समान हैं, वे सारे धर्म समान है, का सुबूत एकत्र नहीं दे सकतीं हैं। क्यों कि उनके उत्प्रेरक तत्व बिल्कुल अलग-अलग हैं और उनकी अवहेलना के नतीजे, धर्मों में मतभेद, और असहमति पाई जाती है। यद्यपि आचरण मानव जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग है, लेकिन यह मात्र एक अंश है जो सम्पूर्ण स्थान नहीं ले सकता। नैतिक शिक्षायें और कुछ सामान्य मान्यताओं में भी स्थिति यह है कि गहराई और विस्तृत में जाने के बाद भी उनके मध्य विभेद पाये जाते हैं।

नैतिक शिक्षाओं और मान्यताओं का पालन करने

के लिये उत्प्रेरक शक्ति की आवश्यकता है। उनकी अवहेलना के नतीजे में एक सर्व शक्तिमान हस्ती के समक्ष पूछगच्छ और पकड़े जाने का एहसास और भय ज़रूरी है। वरना उसके बग़ैर नैतिक शिक्षायें और मान्यतायें पुस्तकों,उपदेशों और धार्मिक गोष्ठियों तक सीमित रह जायेंगी। व्यवहारिक जीवन में उनकी कोई झलक और प्रभाव नहीं दिखाई पड़ेगें। धर्मों की सामान्य बातें वास्तव में एक हक़ीक़त पता देती हैं, वह यह है कि मानव जाति की शुरूआत में एक ही धर्म था। उसी एक धर्म से समय के गुजरने के साथ-साथ विभिन्न कारणों के आधार पर नये-नये धर्म बना लिये गये।

कुछ धर्मों के इतिहास पर ग़ौर करने पर पता चलता है कि वह प्रचलित धर्म की खराबियों और उनके अनुयायियों के अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में गढ लिये गये थे। उदाहरण के रूप में बौद्ध और जैन दोनों धर्मों के बारे में बताया जाता है कि ये हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया में अस्तित्व में आये।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकांश धर्म के संस्थापकों की शख्सीयत और उनकी शिक्षायें तथा मार्गदर्शन इतिहास के लम्बी यात्रा में लुप्त हो कर रह गये हैं। उनकी वास्तविकता क्या है ? यह मालूम करना आज सम्भव नहीं रहा।

धर्मों की मूल शिक्षायें और उनके आदेशों एवं उपदेशों को मालूम करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम धार्मिक

ग्रन्थ हैं और दूसरा साधन उनके संस्थापकों के आचरण और उनकी जीवनी है, लेकिन (इन्सान के अतिरिक्त) इन दोनों माध्यमों के सम्बंध से निराशा के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता। क्योंकि उन धर्म संस्थापकों के जीवनकाल में उनकी शिक्षाओं को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका था। उनकी मृत्यु के सैकड़ों वर्ष बाद स्मरण के आधार पर उन्हें संकलित करने का प्रयास किया गया, जिसके नतीजे में सैंकड़ों विरोधाभास खुलकर सामने आ गये। इसी आधार पर कई-कई समुदाय अस्तित्व में आ गये। स्पष्ट रहे कि पुस्तकों के संकलित होने तक सुनी-सुनाई चलती रहीं। अब यह विश्वास के साथ कैसे कहा जा सकता है कि धर्म संस्थापकों की शिक्षाओं और उपदेशों को उनके अनुयाईयों और शिष्यों ने बग़ैर किसी परिवर्तन और बदलाव तथा कमी और ज़्यादती के सुरक्षित रखा था।

कुछ इसी प्रकार का मामला धर्म संस्थापकों की जीवनियों और उनके आचरण है। आमतौर से किस्से इनके कहानियों तथा प्रेम और आस्था का रंग, तथ्यों और सही घटनाओं पर भारी है। इसी लिये कुछ शोधकर्ताओं और धार्मिक विद्धानों ने कुछ धर्म संस्थापकों के अस्तित्व के बारे में ही संदेह ज़ाहिर किया है और कहा है कि यह सारी चीज़ें कालान्तर से सम्बन्धित हैं।

मानवता का पहला धर्म :-

हम यह कैसे कल्पना कर सकते हैं कि मानव जाति के उदभव काल में कोई धर्म नहीं था, या बहुत सारे धर्म थे?

जिस ईश्वर ने मानव और समस्त सृष्टियों को पैदा किया, जिसने पक्षी को उड़ना और मछली को तैरना सिखाया, क्या उसने मानव जीवन का कोई उद्देश्य सुनिश्चित नहीं किया और उसे अपनी इच्छा और पसन्दीदा मार्ग पर चलना नहीं सिखाया ? जगत की हर चीज़ मानव के लिये है और मानव ईश्वर की सबसे मूल्यवान रचना है। क्या इन्सान पक्षियों और मछलियों से भी तुच्छ है कि ईश्वर ने उनके जीवन के लिये नियम और कानून बनाये, लेकिन मानव जीवन के लिये कोई दिशा-निर्देश नहीं प्रदान किये, बल्कि उन्हें भटकने के लिये छोड़ दिया ? जगत में जितनी वस्तुयें भी पाई जाती हैं, उनकी रचना का उद्देश्य ईश्वर की ओर से निर्धारित है। इसी प्रकार इन्सान जो इन सारी रचनाओं में सबसे सर्वोच्च एवं श्रेष्ठ है, उसका भी एक जीवन उद्देश्य ईश्वर ने निर्धारित किया है। इस उद्देश्य से इन्सान को सचेत करने वाला ईश्वर ही हो सकता था, इसलिए ईश्वर ने मानव जीवन उद्देश्य और उसकी प्राप्ति के लिए इन्सान को सविस्तार निर्देश और मार्गदर्शन की व्यवस्था की। इसके लिए जो व्यवस्था की गयी उसे ईशदूतत्व यानी रिसालत कहते हैं।

इन्सान इतनी बुद्धि रखता है कि यदि कोई मशीन बनाये तो उसके प्रयोग-विधि और मार्गदर्शन पर आधारित एक मैनुअल प्रकाशित करता है। वह ईश्वर जिसने इन्सान को अक्ल दिया, क्या वह ऐसा हो सकता है कि उसे पैदा करके उसे जीवन उद्देश्य न बताये और उसके लिये

हिदायत और मार्गदर्शन का व्यवस्था न करे? क्या ईश्वर ने इन्सान को पैदा तो कर दिया परन्तु उसे जीवन का मैनुअल प्रदान नहीं किया। वास्तविकता यह है कि ईश्वर ने इन्सानों को मात्र सूर्य, चन्द्रमा, हवा, पानी, जंगल, पहाड़, दरिया और समन्दर ही नही प्रदान किये बल्कि इन्सान की सबसे बड़ी ज़रूरत को भी पूरा किया ताकि उसे ईश्वर की पहचान, जीवन उद्देश्य की समझ हासिल हो और ईश्वर की प्रसन्नता की प्राप्ति तथा उसके क्रोध से बचने का रास्ता मालूम हो। ईश्वर ने मानव की सब से महान और महत्वपूर्ण आवश्यकता को बेहतरीन तरीक़े से पूरा किया।

मानवजाति के प्रारम्भ में दिया गया मैनुअल अर्थात मार्गदर्शन मानवता का पहला धर्म था। उस धर्म को किसी व्यक्ति ने प्रतिपादित नहीं किया था, बल्कि वह ईश्वर द्वारा प्रदान किया हुआ था। उसमें एक सच्चे ईश्वर की पहचान, सांसारिक, भौतिक एवं अध्यात्मिक जीवन का संतुलित विकास, नैतिक शिक्षायें, आत्मा का पवित्रीकरण, मानव अधिकारों का ख्याल पारलौकिक मुक्ति, ईश-प्रसन्नता की प्राप्ति का मार्ग तथा सम्पूर्ण जीवन के लिये मार्गदर्शन मौजूद था। उस धर्म में एक ओर तो व्यक्ति और समाज के लिये न्याय और इन्साफ़ और सदभाव और शान्ति की ज़मानत दी गयी तो दूसरी ओर अन्याय एवं अत्याचार तथा हर प्रकार के शोषण और उपद्रव और बिगाड़ से मुक्त जीवन व्यतीत करने के लिये शिक्षायें प्रदान की गयी थीं। यह ईश्वर के समक्ष व्यक्ति का पूर्ण समर्पण का विधान था।

एक सच्चे और ईश्वरीय धर्म की जो विशेषतायें पिछले पन्नों में व्यक्त की गयी हैं वे सारी विशेषतायें उस धर्म में पायी जाती थीं। उस धर्म की शिक्षा एवं उपदेश और उसका व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करने के लिये ईश्वर को इन्सान के रूप में पृथ्वी पर आने की आवश्यकता ही नहीं थी। (जैसा कि अवतारवाद का विश्वास है) ईश्वर ने धर्म की शिक्षा एवं प्रचार-प्रसार और व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करने के लिये अपने बन्दों में से हर ज़माने में महान व्यक्ति को चुनकर नबी और पैग़म्बर नियुक्त किया। नबी और पैगम्बर हर दौर में विभिन्न जातियों में आते रहे। सभी ने एक ही धर्म लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। ईश्वर ने उन महापुरूषों को अपनी ओर से ग्रन्थ और पुस्तकें प्रदान किये।

हर दौर में ऐसे लोग रहे जो नबियों और पैगम्बरों की दावत स्वीकार करके उनकी शिक्षाओं पर चलते रहे, वहीं दूसरी ओर इन्कार, ज़िद एवं हठधर्मी का रवैया अपनाने और विरोध करने वाले कुछ व्यक्ति भी होते हैं। एक अन्याय कुछ नादानों ने यह की थी कि नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाओं को मनमाने ढंग से बदल डाला। सत्य को स्वीकार कर उस पर चलने के बजाये नई-नई आस्थायें और स्वरचित शिक्षाओं को सत्यधर्म में सम्मिलित करके वह खुद भी भटक गये और दूसरे व्यक्तियों की गुमराही और पथभृष्टता का कारण भी बने। अन्य इन्सानों पर अत्याचार एवं अन्याय का चलन हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया में नये नये धर्म अस्तित्व में आते चले गये। ईश्वर ने तो एक ही धर्म प्रारम्भ में इन्सानों को प्रदान

किया था, परन्तु इन्सानों ने उस ईश्वरीय धर्म में कमी और बढ़ौत्तरी करके नये-नये धर्म बना लिये।

धार्मिक लोगों के मध्य असहमति के कारण :-

इस विषय पर विख्यात इस्लामी विचारक डॉ० अब्दुल हक़ अन्सारी का यह लेख वस्तुस्थिति को स्पष्ट करता है।

- भारत में धार्मिक लोगों के मध्य असहमति और टकराव के कुछ दूसरे ही कारण हैं।
- प्रथम और मूल कारण यह है कि हम में से कुछ लोग और कुछ समुदाय यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि भारत केवल एक धर्म के मानने वालों का नहीं, बल्कि उन समस्त धर्म वालों का देश है जो यहां पर सैंकड़ों और हज़ारों वर्ष से रहते और बसते चले आये हैं। ये लोग इस देश को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते हैं और दूसरों को विदेशी कहते हैं। उन्होंने भारतीय होने की जो शर्तें बताई हैं, उनका सार यह है कि जब तक दूसरे लोग उनकी धार्मिक मान्यताओं को अपनी मान्यतायें और उनको धार्मिक महापुरूषों को अपनें महापुरूष न स्वीकार कर लें, अर्थात दूसरे शब्दों में जब तक उनके धर्म के एक-एक अंश पर विश्वास न करें उस वक्त तक भारतीय कहलाने के पात्र नहीं हैं। उनके विचार में भारतीय होने के लिए इस देश के साथ वफ़ादारी और प्रेम काफी नहीं है। स्पष्ट है कि इस मानसिकता की मौजूदगी में कभी सदभाव एवं शान्ति का वातावरण स्थापित नहीं हो सकता।

दूसरा कारण यह है कि कुछ लोग ग़लती से यह सोचने लगे हैं कि उनका अपने धर्म को सच्चा समझना, अपनी रीति व रिवाज को श्रेष्ठ जानना और अपनी परम्पराओं और महापुरूषों का सम्मान करना इस बात की मांग करता हैं कि वह अपने धर्म को दूसरों पर थोप दें और अपने तौर तरीक़ों को दूसरों से ज़बरदस्ती मनवायें और यदि यह सम्भव न हो तो उनके विश्वासों पर व्यंग करें। उनके पूजा-स्थलों का अनादर करें और उनके महापुरूषों की हंसी उड़ायें। हालांकि इन दोनों बातों में कोई सम्बंध नहीं है। मैं यदि किसी विश्वास और आस्था को सही और दूसरे को ग़लत समझता हूँ तो उससे मुझे कब यह अधिकार पहुँचता है कि दूसरे विश्वासों का मज़ाक उड़ाऊं। अगर मैं अपने तौर-तरीके को बेहतर और दूसरे तौर-तरीक़े को ग़लत समझता हूँ तो इससे कब यह अनिवार्य हो जाता है कि मैं अपने तौर-तरीकों को दूसरों पर ज़बरदस्ती थोप दूँ। जो व्यक्ति या समुदाय भी ऐसा करेगा वह मानवता और प्रजातन्त्र का ही नहीं बल्कि स्वयं अपने धर्म के मूल्यों और मान्यताओं का गला घोटेगा।

''तीसरा कारण यह है कि हम में से अकसर अपने लिए जो अधिकार चाहते हैं वह दूसरों को देने के लिये तैयार नहीं होते। मिसाल के तौर पर हम यह चाहते हैं कि हमारी जान व माल सुरक्षित हो। हमारे मान-सम्मान को आंच न आये, हमें शिक्षा और विकास का पूरा अवसर प्राप्त हो। मुनासिब पदों और नौकरियों पर हमारे लोग

आसीन हों। हमें अपने धर्म के प्रचार-प्रसार की पूरी स्वतन्त्रता हो। अपनी सन्तान को अपने धर्म की शिक्षा देने का अवसर प्राप्त हो। अपने धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थायें स्थापित करने तथा संचालन का अधिकार तथा अपनी भाषा को पढ़ने- पढ़ाने और विकसित करने की सारी सुविधायें प्राप्त हों। परन्तु हम यही अधिकार दूसरे धर्म वालों को देने के लिये तैयार नहीं होते। हम खुद अपने अधिकार से अधिक प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु दूसरों को उनका उचित हक भी देना पसन्द नहीं करते और हम कदापि नहीं सोचते कि हमारा यह रवैया न्याय और इन्साफ़ के विरूद्ध ही नहीं बल्कि स्वयं हमारे अपने धर्म की बेहतरीन परम्पराओं और मान्यताओं के भी विरूद्ध है। इससे हमारे धर्म की मर्यादा नहीं बढ़ती बल्कि सम्पूर्ण विश्व में रुसवाई होती है।

डा० अब्दुल हक़ अन्सारी धार्मिक लोगों में असहमति और टकराव के उपरोक्त तीन बड़े कारण व्यक्त करने के बाद उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

1- ''हम भारत को हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, इसाइयों, जैनियों, पारसियों और उन सभी समुदायों का देश समझें जो पीढ़ियों से इसमें बसते और रहते चले आये हैं। हम सच्चे दिल से मानें कि हमारे देश में प्रत्येक धर्म और समुदाय को समान अधिकार प्राप्त हों''।

2- अपने धर्म, अपने रीति-रिवाज, अपनी मान्यताओं और अपनी परम्पराओं को ज़बरदस्ती दूसरों पर न थोपें।

दूसरों की पूजा-स्थलों, धार्मिक महापुरूषों, धर्म ग्रन्थों, परम्पराओं, त्योहारों और तौर तरीक़ों का सम्मान करें। दूसरों के धर्म, धार्मिक मामलों और व्यक्तित्वों के सम्मान का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि हम अपने धर्म की बातों में संदेह करें। न इससे यह नतीजा निकलता है कि हम प्रत्येक धर्म को समान मानने लगें और किसी को किसी की अपेक्षा प्राथमिकता न दें या किसी बात को सही और किसी को गलत न ठहरायें। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बातें सही और दूसरों की बातें गलत समझने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु किसी को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह दूसरों के विचारों का अनादर और अपमान करें।

3- हमें प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार स्वीकार करना चाहिये कि वह किसी धर्म में विश्वास रखने का एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करने में स्वतंत्र और स्वच्छंद रहे। उसको अपने विचारों तथा विचारधाराओं को सामान्य नैतिक नियमों एवं लोकतान्त्रिक सीमाओं में स्वयं रहते हुये व्यक्त करने और इस उद्देश्य के लिए प्रचार एवं प्रसार के सारे संसाधनों, प्रेस एवं समाचार पत्रों के प्रयोग करने, पुस्तकें प्रकाशित करने तथा विद्यालयों और मदरसों को स्थापित एवं संचालित करने का अधिकार पहुँचता है।

4- अन्तिम बात यह कि हम अपने धर्म के आम मानवीय मूल्यों को न भूलें। उन्हें अपने धर्म का मौलिक और महत्वपूर्ण हिस्सा समझें। धर्म और समुदाय का अन्तर किये बग़ैर उनको प्रत्येक व्यक्ति के साथ बरतना सीखें। प्रत्येक व्यक्ति की सेवा को अपना धर्म समझें और किसी

भी व्यक्ति के साथ अन्याय और अत्याचार को महा पाप समझें। यह बात भलीभांति समझ लें कि किसी एक व्यक्ति को अकारण सता कर, उसको अधिकारों से वंचित करके उसकी जान व माल और मान व मर्यादा को नुकसान पहुँचा कर हम न अपनी सेवा करेंगे न अपने धर्म और न अपने देश की। न्याय और इन्साफ के विरुद्ध हमारा हर क़दम मानवीय, नैतिक, धार्मिक और अध्यात्मिक प्रत्येक दृष्टि से ग़लत है और हमारी मुक्ति और नजात की राह में पहाड़ जैसी रुकावट'' है।

(राष्ट्रीय एकता और इस्लाम पेज नं.18–21)

कुछ मूल धारणायें और धर्म

कुछ मूल धारणाओं के सम्बन्ध में धर्मों की शिक्षाओं पर हम विचार करें तो 'सारे धर्म समान हैं' की वास्तविकता का पता चल सकता है। यदि इन मूल धारणाओं के बारे में धर्मों की शिक्षाओं में समानता है या मात्र आंशिक मतभेद पाये जाते हैं तो कहा जा सकता है कि सारे धर्म सत्य और सही हैं लेकिन यदि इसके विपरीत इन मूल धारणाओं में अत्याधिक विभेद और विरोधाभास पाया जाता है तो विचार करना चाहिये कि क्या इसके बाद भी 'सारे धर्म समान हैं' की धारणा को उचित माना जा सकता है? सभी धर्मों की शिक्षाओं का विस्तृत विवरण बहुत लम्बा होगा, इसलिए मात्र कुछ धर्मों की धारणाओं पर विचार कीजिये। कुछ मूल धारणायें निम्न हैं।

1– ईश्वर का अस्तित्व और उसकी कल्पना

2– सृष्टि की रचना

3– मानव के लिये हिदायत और मार्गदर्शन की व्यवस्था (यानी धर्म या दीन की व्यवस्था)

4– मरणोत्तर जीवन (परलोक, स्वर्ग और नर्क)

ये धारणायें मात्र विद्वता और दार्शनिक चिन्तन के विषय नहीं है इनका गहरा सम्बंध व्यक्ति और समाज के व्यवहारिक जीवन, उसकी सफलता और विफलता और उसके पारलौकिक परिणाम से है।

1– ईश्वर की कल्पना–

सबसे पहले ईश्वरीय कल्पना के सम्बंध में धर्मों की

मौलिक शिक्षाओं का सार निम्नलिखित है :

- हिन्दू धर्म में ईश्वर की परिकल्पना पर वार्ता की शुरूआत एक ही हस्ती से होती है और उसके उपरान्त दो और हस्तियाँ भी ईश्वरत्व में सम्मिलित हो जाती हैं। इस तरह तीन ईश्वर (ब्रम्हा, विष्णु, महेश) माने गये हैं। ब्रम्हा को सृष्टा माना गया है, विष्णु को ब्रह्माण्ड का संचालक और प्रभु के रूप में स्वीकार किया गया है और महेश को जगत का विनाश करने वाला माना गया है। आगे चल कर भगवानों की कुल संख्या ३३ करोड़ तक पहुँच जाती है जहां तक वेदों का सम्बंध है उसमें एक ईश्वर के अस्तित्व और उसके गुणों के बारे में उल्लेख है।

हिन्दू धर्म में दो सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो ईश्वर के अस्तित्व के विपरीत तर्क प्रस्तुत करते हैं। यानी मिमांसा और सांख्य। अतः इस धर्म में ईश्वर के बारे में कोई एक सर्वसम्मत धारणा नहीं है जिस को स्वीकार करना हिन्दू बनने के लिये आवश्यक हो, या जिसका इन्कार करने वाला हिंदू धर्म से निकल जाता हो। एक ईश्वर पर विश्वास करने वाले, एक से अधिक ईश्वरों को मानने वाले और ईश्वर का इन्कार करने वाले सब हिन्दू हो सकते हैं।

व्यवहारिक स्थिति हिन्दु समाज की ऐसी है कि उसके अनुयायी बहुत सारे ईश्वरों की पूजा व उपासना करते हैं और कुछ के यह भी विचार हैं कि हर चीज़ ईश्वर या भगवान है। अतः हिन्दू धर्म के हवाले से कहा जाता है कि धरती का हर कण देवता है। इस विचारधारा

''वहदतुल वजूद'' कहा जाता है इस दर्शन को अद्वेतवाद भी कहते हैं अर्थात मूल अस्तित्व मात्र ईश्वर का है और ब्रह्माण्ड के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है।

● अब ईसाई धर्म को लीजिये। मूल रूप से ईसाई धर्म ईश्वर एक है, परन्तु ईश्वर का एक पुत्र अर्थात ईसा मसीह को स्वीकार किया गया है, कि यह भी ईश्वर है और एक ईश्वर होली घोस्ट (विपरीत) हैं। इस धारणा को ट्रिनिटी (त्रिमूर्ति) कहा गया है। इस धारणा में मौलिक विश्वास के रूप में यह बात भी सम्मिलित है कि मुक्ति के लिए ईसा पर विश्वास रखना, उनको ईश्वर का पुत्र और ईश्वर स्वीकार करना अनिवार्य है और इन्सानों के गुनाहों (पापों) के प्रयाश्चित के रूप में उनका सूली पर चढ़ जाना सत्य है। इस प्रकार ईश्वर एक भी है और तीन भी। तीन ईश्वरों के निर्धारण में भी मतभेद पाये जाते हैं। यानी पिता, पुत्र और जिब्रील या पिता, पुत्र और कुमारी मरियम। डॉ० मुहसिन उसमानी नदवी लिखते हैं :

''ईश्वर के अस्तित्व के बाद ईश्वर की कल्पना के सम्बंध से ईसाई विश्वास की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की जा चुकी है। परन्तु उसके विस्तार में जाने के बाद सख्त उलझनें पेश आती हैं। उदाहरण के रूप में तीन ईश्वर में क्या हरेक वैसा ही ईश्वर है, जैसा कि असली ईश्वर है। त्रिमूर्ति की व्याख्या में ईसाई धर्म गुरू कहते हैं कि पिता ईश्वर है, पुत्र ईश्वर है और होली घोस्ट ईश्वर है। परन्तु यह तीनों मिलकर तीन ईश्वर नहीं हैं बल्कि एक ही ईश्वर

है। पिता की तरह पुत्र भी अनादिकाल से मौजूद है इनमें से किसी को ज़मानी अव्वलीयत ( ) प्राप्त नहीं है।

(धर्मों का अध्ययन डा० मुहसिन उसमानी नदवी पेज नं. 128-129)

● कुछ धर्मों में ईश्वर की स्वीकृति है ना ही इन्कार। बौद्ध धर्म सृष्टि की रचना तथा इन्सान की पैदाइश में किसी सुपर नेचुरल अस्तित्व की भूमिका स्वीकार नहीं करता।

● जैन धर्म के अनुसार मानव तथा जगत की रचना के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं। जैन धर्म ईश्वर का इन्कार करता है। भौतिक तत्व और जीव को अनादि और अनन्त मानता है। यह दोनों धर्म ईश्वर के अस्तित्व और ईश्वर की कल्पना से खाली हैं।

सिक्ख धर्म में ईश्वर की कल्पना के सम्बंध से डा० मुहसिन उस्मानी लिखते हैं :

''सिक्ख मत में मूल हस्ती गुरू की है, गुरू नानक जी इस मत के संस्थापक हैं, वह सगुन ब्रहमा को करतार (सृष्टा), अकाल (अनन्त), सतनाम (पवित्र नाम) जैसे विभिन्न नामों से उपासना के पात्र बताते हैं। नानक जी के बाद सिक्ख साहित्य में वाहे गुरू का शब्द भी प्रयोग किया गया है। गुरू नानक ने अल्लाह, खुदा और परवरदिगार और साहब जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने पौराणिक भक्ति में प्रयुक्त ईश्वर के विभिन्न नामों को भी प्रयोग किया है उदाहरण के रूप में राम, गोपाल, मुरारी और नारायण'' (धर्मो का अध्ययन पेज नं. 150-151)

सिक्ख धर्म में ईश्वर, उसके अस्तित्व और गुणों तथा उसके तकाज़ों के सम्बंध में इससे अधिक कोई

विवरण नहीं मिलता।

● यहूदी धर्म में एक ईश्वर की कल्पना है। यहूदी क़ौम ईश्वर के साथ विशेष सम्बंध का दावा करती है। उनके धार्मिक ग्रन्थ में यह घटना उल्लेखित है।

ईश्वर ने एक बार महान पैगम्बर हज़रत याकूब अलै० से रात भर कुश्ती लड़ी और पराजित हुआ।
(पैदाइश बाब 29–24–32 पुराना और नया अहदनामा उर्दू अनुवाद बाइबिल सोसायटी हिन्द बंगलोर–संस्करण 1975)
डा० मुहसिन उस्मानी ने लिखा है–

यहूदी धर्म में ईश्वर की कल्पना से अधिक महत्व इस बात को दी गयी है कि यहूदी क़ौम ईश्वर की चहेती और विशिष्ट क़ौम है। यह विश्व में शासन करने तथा परलोक में स्वर्ग के लिये पैदा किये गये हैं। (धर्मों का अध्ययन पेज नं. 150–151)

● इस्लाम के अनुसार सम्पूर्ण जगत और मानव का सृष्टा केवल एक ईश्वर है। सृष्टि और मानव की रचना स्वतः नहीं हुई है और न बहुत सारे ईश्वरों का कोई अस्तित्व है। ईश्वर अनादि है और अनन्त है। उसका कोई पुत्र, पुत्री और पत्नी नहीं है। वह समस्त अच्छे गुणों का मालिक है। वह किसी की सहायता का मुहताज नहीं परन्तु सब उसके मुहताज हैं। इस्लाम के अनुसार ईश्वर मात्र सृष्टा, शाश्वत, स्वामी एवं प्रभु ही नहीं अपितु वह शासक, मार्गदर्शक तथा विधि निर्माता भी है। क़ुरआन बताता है कि

ईश्वर ने अपने-अपने सन्देष्टाओं के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जीवन के लिए एक विधान प्रदान किया। कुरआन इन्सान को चेतावनी देता है कि ईश्वर के निर्धारित आदेशों की अवहेलना कभी न करना और याद रखना कि मृत्यु के उपरान्त तुम्हें उसी के पास जाना है और वह तुम से हिसाब लेगा और उसके उपरान्त तुम्हारे लिये स्वर्ग अथवा नरक का फैसला करेगा। उसकी हस्ती एवं गुण, अधिकार एवं स्वामित्व में कोई उसका साझीदार नहीं है। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार इन सब रूपों में किसी और रूप में ईश्वर के साथ किसी को सम्मिलित करना (चाहे वह फरिश्ते हों, महापुरुष हों या कोई और हस्ती हो पूरी तरह शिर्क (अनेकेश्वरवाद) है, और यह सबसे संगीन गुनाह है। कुरआन में हैः

जान लो ! आकाशों में बसने वाले हों या पृथ्वी के सबका मालिक अल्लाह है। और जो लोग अल्लाह के सिवा कुछ मनगढ़ंत साझीदारों को पुकार रहे हैं वह निरे भ्रम और गुमान के पीछे चल रहे हैं और मात्र अटकल बाजियां करते हैं (यूनुस : 66)

दूसरी जगह कहा गया है :

और उन लोगों ने ईश्वर के कुछ समकक्ष प्रतिद्वन्दी ठहरा लिये ताकि वह उन्हें ईश्वर के मार्ग से भटका दें (तो ऐ नबी) इनसे कहो अच्छा कुछ मज़े कर लो, अन्ततः तुम्हें पलट कर जाना नरक ही में है'' (सूरह इब्राहीम- 30)

कुरआन में एक और स्थान पर कहा गया है :

''ईश्वर के यहां बस शिर्क (अनेकश्वरवाद) ही की क्षमा नहीं है, इसके सिवा और सब कुछ माफ़ हो सकता है, जिसे वह माफ करना चाहे। जिसने अल्लाह के साथ किसी को साझीदार ठहराया, वह तो गुमराही में ही दूर निकल गया। (सूरह निसा 116)

समीक्षा :–

इस समीक्षा से स्पष्ट है कि उपरोक्त धर्मों में ईश्वर की कल्पना भिन्न-भिन्न ही नहीं बल्कि एक दूसरे के विपरीत और विरोधी है। यहां तक कि धर्मों में ईश्वर का इकरार और इन्कार करने वाले दोनों प्रकार के धर्म पाये जाते है। इसके अतिरिक्त कुछ धर्म ईश्वर के अस्तित्व को मानते हुये एक से अधिक ईश्वरों को स्वीकार करते है। उन धर्मों में इस्लाम ही अकेला एक ऐसा धर्म है जो अत्यन्त तीव्रता और मजबूती के साथ एक के अलावा किसी भी दूसरे ईश्वर का इनकार करता है। क्या एक ही समय में उन सभी धर्मों को सही माना जा सकता है ? स्पष्ट है कि उनमें से कोई एक ही धारणा सही होगी और होना भी चाहिये। यदि हम बुद्धि एवं विवेक और चिन्तन-मनन के आधार पर किसी एक ईश्वर की धारणा को सही और शेष धारणाओं को सही न समझें तो क्या इससे दूसरे धर्मो का अपमान है ? यह बात तो सैद्धान्तिक रूप से सही है कि धर्मों का अनादर न किया जाये परन्तु जो सत्य है उसे सत्य तो कहना होगा। इसके बजाये यदि हम आग्रह करते हैं कि सभी धर्मों को सत्य समझा जाये तो इसका स्पष्ट अर्थ यह

होगा कि जो वास्तव में ईश्वर नहीं है उसको भी ईश्वर स्वीकार करें और सच्चे ईश्वर के समकक्ष समझें। जो ईश्वर नहीं है उसको ईश्वर मानना और जो सच्चा ईश्वर और उपास्य है उसका इन्कार करना ईश्वर के साथ खुली हुई उदंडता एवं अवज्ञा है। ऐसी कार्यशैली के नतीजे में मरणोत्तर जीवन में इन्सान ईश्वर के पुरस्कार का पात्र होगा या दंड का ? यह बात सरलता से समझी जा सकती है।

सृष्टि की रचना :

सृष्टि की रचना किस प्रकार हुई ? इसका कोई सृष्टा है या नहीं, यदि कोई सृष्टा है तो इस सृष्टि की रचना के बाद तथा उसने सन्यास ले लिया और उसने इस सृष्टि को दूसरों को सौंप दिया है ? या यह कि वह सृष्टि का जन्मदाता ही नहीं अपितु संचालक एवं प्रबन्धक भी है और उसी का आदेश समस्त प्राणियों और इन्सानों पर चलता है। इस सृष्टि की रचना का उद्देश्य क्या है? इस सृष्टि का अन्त क्या है ? क्या यह यूँ ही सदैव चलती रहेगी? यह और इस प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध से धर्मों के मार्गदर्शन पर हम विचार करें।

● हिन्दू धर्म में जगत की रचना के बारे में विभिन्न धारणायें पाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में एक धारणा वेदों में है तथा अन्य धारणायें उपनिषद, मनुस्मृति और पुराणों में हैं। एक धारणा आर्य समाज की है। यह समस्त धारणायें एक दूसरे से भिन्न हैं। कुछ धारणायों का उल्लेख निम्न हैं :

डा० ताराचन्द्र अपनी पुस्तक Influence of Islam on Indian culture में लिखते हैं : ''प्राचीन मौजूद हस्ती ने सर्वप्रथम जल पैदा किया जिसके अन्दर सोने का अन्डा तैरता था, वह उसके अन्दर प्रवेश किया और उससे पहली रचना ब्रम्हा के रूप में उत्पन्न हुई। तब ब्रम्हा ने देवताओं, स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तथा मानव को उत्पन्न किया'' यह वैदिक धारणा है (सृष्टि की रचना और धर्म डॉ० ताराचन्द्र पेज- 2-3)

वेदों में सृष्टि की रचना से सम्बन्धित निम्नलिखित बातें मिलती हैं :

''रौशन तपस्या से यज्ञ और सत्य उत्पन्न हुये। इसके उपरान्त रात और दिन पैदा हुये उसके उपरान्त जल से भरे हुये सागर पैदा हुये। जल से भरे हुये सागर से सन और वर्ष, पैदा हुये। पलक झपकाने में दुनिया के स्वामी ईश्वर ने दिन-रात बनाये'' ईश्वर ने प्राचीन काल के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को बनाया उसने इसके बाद संसार,पृथ्वी तथा आकाश को बनाया ।

(ऋगवेद 10/190/1-3)

देवी भागवत पुराण में सृष्टि रचना के बारे में निम्नलिखित विवरण मिलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं: ''देखो, देवी भागवत पुराण में है कि ''श्री'' नाम व एक देवी श्रीपूर की रानी है। उसने सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न किया और ब्रम्हा, विष्णु और महादेव (शिव) को भी उसी ने बनाया। जब उस देवी की इच्छा यह हुई कि जगत को पैदा

करूं तो उसने अपना हाथ घिसा, उसके हाथ में छाला दिखाई पड़ा। उससे ब्रम्हा पैदा हुआ। ब्रम्हा से देवी ने कहा तू मुझसे विवाह कर, ब्रम्हा ने कहा तू मेरी माता है। मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। यह सुनकर माता को क्रोध आया और पुत्र को अपनी सामर्थ्य से भस्म कर डाला। (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 11 पेज 216)

इस कहानी में देवी ने आगे चलकर विष्णु और महादेव को जन्म दिया।

''भागवत पुराण में सृष्टि रचना के बारे में कहा गया है कि विष्णु के नाभि से कमल, कमल से ब्रम्हा, ब्रम्हा के दाहिना पैर के अंगूठे से स्वाम्भू, बाये अंगूठे से सतरूपा रानी, चेहरे से रुद्र, मरीचि आदि से दस पुत्र पैदा हुये, उनसे दस प्रजापति हुये, उनकी तेरह पुत्रियों का विवाह कश्यप से हुआ, उनमें छती से दैत्य, दनु से राक्षस अदिति से आदित्य, बिनता से पक्षी, कूद्र से सांप सत्भा से कुत्ते, गीदड़ आदि और दूसरी स्त्रियों से हाथी-घोड़े, ऊँट, गधे, भैसे घास-फूस, बबूल आदि वृक्ष कांटों सहित उत्पन्न हो गये'' (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 11 पेज 218)

शिव पुराण की धारणा सृष्टि की रचना के बारे में निम्न है-

''शिव पुराण में लिखा है कि जब शिव ने इच्छा प्रकट की कि मैं जगत की रचना करूं तो एक नारायण नामक तालाब पैदा किया। उसके नाभि से कमल, कमल से ब्रम्हा उत्पन्न हुआ, जब उसने देखा कि सभी ओर जल ही जल

है, उसने जल को मुट्ठी में भरकर जल में फेंका उससे बुलबुला उठा और बुलबुले से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रम्हा से कहा, हे पुत्र जगत की रचना कर, ब्रम्हा ने कहा मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ अपितु तू मेरा पुत्र है। इस बात पर उनमें झगड़ा हुआ और दोनों देवता जल पर हज़ार वर्ष लड़ते रहे। यह कहानी बहुत लम्बी है, इसके अन्त में एक मूर्ति निकल आई उसने कहा कि 'मैंने तुम दोनों से सृष्टि-रचना के बारे में कहा था, लड़ने-झगड़ने में क्यों लगे रहे। ब्रम्हा, विष्णु ने कहा : हम सामग्री के बिना रचना कहां से करें। तब महादेव ने अपनी ज़टा से राख का एक गोला निकाल कर दिया कि जा इसमें से समस्त प्राणियां बना'' (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 11 पेज 237-238)

जगत की रचना के बारे में ये भिन्न-भिन्न धारणायें हैं, जो पुराणों में व्यक्त की गयी है, यहां उनके सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत किया गया है। हिन्दू धर्म में सृष्टि की रचना के सम्बंध में कोई सर्वसम्मत धारणा नहीं मिलता।

अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन पुराणों में जगत की उत्पत्ति के बारे में व्यक्त किये गये विवरण को असत्य बताया है। (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास - 11 पेज 238-239)

● बुद्ध मत में सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में वार्ता नहीं की गयी है ऐडवर्ड कान्ज़े अ पनी पुस्तक Buddhism and its development में लिखते हैं :

''बुद्ध मत की धारणायें ईश्वर के अस्तित्व का

स्पष्ट रूप से इन्कार नहीं करतीं परन्तु वे इस सम्बंध में रुचि भी नहीं रखतीं कि जगत की उत्पत्ति किसने की है। बुद्ध मत में सृष्टि की उत्पत्ति का उद्देश्य यह है कि संसार की सारी प्राणियों को दुख से मुक्ति मिले और सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित अटकलें लगाना समय का नष्ट होना ही नहीं अपितु यह लोगों के दरम्यान शत्रुता एवं विवाद का कारण भी बन सकते हैं और इस प्रकार दुख से छुटकारा पाने के उद्देश्य को नज़र अन्दाज कर देने के कारण भी हो सकते हैं। इस प्रकार बुद्ध मत को मानने वाले सृष्टा के सम्बंध में अज्ञेयवाद का रवैया अपनाते हैं। यदि जगत को पैदा करने वाले सृष्टा की उपेक्षा नास्तिकता है तो बुद्धमत नास्तिक धर्म है। (मज़ाहिब और तखलीके कायनात पेज नं.-41)

● जैनमत में सृष्टि की उत्पत्ति की धारणा विशुद्ध रूप से भौतिकता पर आधारित है, क्यों कि जैनमत ईश्वर के अस्तित्व का इन्कार करता है। सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में निम्नलिखित उद्धरण पर विचार कीजिये-

''संसार की समस्त वस्तुयें और संसार के समस्त परिवर्तन और परिस्थितियां चाहे अच्छी हो या बुरी, जीव के राग व द्वेष (सम्बन्धों) और पदार्थ के प्रकार एवं विशेषताओं के अनुसार बनते हैं। इसमें परमात्मा की ओर से किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं।'' (जैन धर्म और परमात्मा पेज नं. 36)

इसी पुस्तक का एक और उद्धरण निम्न है-

वास्तव में संसार किस का नाम है, जीव जो

आवागमन में फंसा हुआ है, जन्म, मरण करता है..... कभी नरक में जाता है, कभी ईंट–पत्थर, पेड़–पौधे एवं जानवर आदि बनता है। कभी मानव या देवता बनता है, कभी सुखी होता है, कभी दुखी.....इसी का नाम संसार या दुनिया है और यह संसार प्रत्येक जीव अपने लिये स्वयं अपने विचारों एवं भावनाओं के अनुसार बनाता है। इस प्रकार संसार का कारण स्वयं जीव अथवा आत्मा है। (जैन धर्म और परमात्मा पेज– 37)

● ईसाई धर्म में जगत की उत्पत्ति के बारे में ओल्ड टेस्टामेन्ट की पहली पुस्तक ''उत्पत्ति'' में निम्नलिखित अनुलेख मिलता है।

''ईश्वर ने प्रारम्भ काल में पृथ्वी और आकाश की उत्पत्ति की, पृथ्वी बंजर तथा सुनसान थी और गहराव के ऊपर अंधेरा था। ईश्वर की आत्मा जल की सतह पर कंपन करती थी। ईश्वर ने कहा कि प्रकाश हो जा, प्रकाश हो गया, ईश्वर ने देखा कि प्रकाश अच्छा है तो ईश्वर ने प्रकाश को अन्धकार से प्रथक किया और ईश्वर ने प्रकाश को दिन कहा और अन्धकार को रात कहा और शाम हुई और सुबह हुई तो पहला दिन हुआ, दूसरे दिन से लेकर छः दिन तक हर दिन के दौरान और ईश्वर की रचना का विवरण अंकित है। और ईश्वर ने अपने काम को जिसे वह करता था सातवें दिन समाप्त किया और अपने सारे कार्य से जिसे वह कर रहा था सातवें दिन फुरसत पाया'' (बाइबिल उत्पत्ति– 1/1–5)

किताबें खुरूज में निम्नलिखित अनुलेख मिलता है। ''क्यों कि ईश्वर ने छै दिन में आकाश, पृथ्वी और सागर तथा जो इनमें है वह सब बनाया और सातवें दिन आराम किया'' (बाइबिल उत्पत्ति- 20/8–11)

ईश्वर के बारे में विचार यह है कि जगत की उत्पत्ति में ईश्वर थक गया और सातवें दिन उसे विश्राम करना पड़ा।

● इस्लाम में जगत की उत्पत्ति की स्पष्ट धारणा पाई जाती है। कुरआन में इसकी तफ़सील देखी जा सकती है। इस्लाम के अनुसार जगत, आत्मा, पदार्थ, अनादि और अनन्त नहीं हैं। वैज्ञानिक शोध ने इसकी पुष्टि की है।

इस्लाम के अनुसार ईश्वर जगत का रचयिता है। उत्पत्ति के लिये उसे किसी पदार्थ और आत्मा आदि की आवश्यकता नहीं थी। ईश्वर ने जीवन की उत्पत्ति का प्रारम्भ जल से किया है। जगत की उत्पत्ति में ईश्वर का कोई साझीदार नहीं है। कुरआन में कहा गया है कि सृष्टि की रचना तो ईश्वर ने की है, फिर ईश्वर को छोड़कर जिन दूसरों की उपासना की जा रही है उन्होंने क्या पैदा किया है? एक मक्खी का पैदा करना भी किसी के लिये सम्भव नहीं। कुरआन में है ''लोगों को एक मिसाल दी जाती है, ध्यान से सुनो, जिन उपास्यों को तुम ईश्वर को छोड़कर पुकारते हो वह सब मिलकर एक मक्खी भी उत्पन्न करना चाहें तो नहीं कर सकते अपितु यदि मक्खी उनसे कोई वस्तु छीन ले जाये तो वह उसे छुड़ा भी नहीं सकते।

(सूरह अलहज्ज 73)

● सृष्टि की रचना में ईश्वर को कोई थकान नहीं हुई जिसके बाद उसे विश्राम करने की आवश्यकता पड़ी हो। ऐसी समस्त दुर्बलताओं से वह बिल्कुल मुक्त है। वह अनादि और शाश्वत है। सृष्टि की रचना के बाद ईश्वर ने उसे किसी दूसरे के हवाले नहीं कर दिया बल्कि अपनी समस्त सृष्टियों पर अकेले उसी का आदेश चलता है। उसी के बनाये हुये, नियमों और कानूनों के अन्तर्गत सभी कार्य कर रहे हैं।

समीक्षा :–

सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों में जो धारणायें प्रस्तुत की गयी हैं उनकी समीक्षा संक्षेप में ऊपर प्रस्तुत की गयी है। इन धारणाओं में सहमति और समानता ढूंढना सम्भव नहीं है, क्यों कि उनमें स्पष्ट विरोधाभास पाया जाता है। दो धर्म तो ऐसे हैं जो ईश्वर के अस्तित्व को सिरे से मानते ही नहीं। उनके निकट सृष्टि की उत्पत्ति में ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है। एक धर्म के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना की और इस कार्य में वह थक गया और सातवें दिन आराम किया। एक धर्म सृष्टि की रचना के सम्बंध से विचित्र कहानियां प्रस्तुत करता है, जिसके लिये बौद्धिक प्रमाण पेश करना और उनकी वैज्ञानिक व्याख्या करना सम्भव नहीं है। एक धर्म सृष्टि की रचना के सिलसिले में एक महान सृष्टा, स्वामी, पालनहार, शासक, दयावान, कृपाशील तथा तत्वदर्शी ईश्वर की धारणा प्रस्तुत करता है। यह धारणा ईश्वर के महान सदगुणों का

प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ उसमें सृष्टि की रचना के सम्बन्ध से जो मार्गदर्शन दिया गया है वह वैज्ञानिक तथ्यों के अनुरूप हैं। यह धारणा बुद्धि एवं विवेक को संतुष्ट करती है।

क्या एक ही समय में यह सारी धारणायें सही और सत्य पर आधारित हो सकती हैं ? क्या इन सबको स्वीकार कर लेना चाहिये या उनमें जो सही है बुद्धि एवं तर्क, प्रकृति और जगत की निशानियों की रोशनी में विचार करके उसे स्वीकार करना चाहिये।

इन्सानों की हिदायत और मार्गदर्शन का प्रबन्ध :–

इन्सान अपने जीवन में अन्य प्राणियों की अपेक्षा सबसे बढ़कर हिदायत और मार्गदर्शन का मुहताज है। उसके लिये यह मार्गदर्शन, रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और इलाज आदि आवश्यकताओं से अधिक ज़रूरी है। जीवन का वह उद्देश्य इन्सान को मालूम होना चाहिये जिसको पूरा करने में पूरा जीवन व्यतीत किया जाये। ईश्वर की इच्छा और पसन्द तथा प्रिय मार्ग पर चलने के लिये मार्गदर्शन की आवश्यकता है। इन्सान को मालूम होना चाहिये कि जीवन के विभिन्न विभागों में ईश्वर के आदेशों का किस प्रकार अनुपालन किया जाये।

प्रश्न यह है कि इन्सान को जीवन के लिये मार्गदर्शन कैसे प्राप्त होता है ? यह बात तो नहीं कही जा सकती कि ईश्वर ने इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन की कोई व्यवस्था नहीं की है। ईश्वर की दया एवं न्याय का

तक़ाज़ा था कि वह इन्सान के मार्गदर्शन का उचित प्रबन्ध करे। अब तनिक देखें कि ईश्वर की ओर से इन्सान के मार्गदर्शन के सम्बन्ध से धर्मों में क्या-क्या धारणायें पाई जाती हैं।

● बुद्ध मत इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिये किसी सुपर नेचुरल माध्यम की ज़रूरत महसूस नहीं करता। मानव जीवन के लिये उनके पास स्पष्ट और विस्तृत मार्गदर्शन के बजाये मात्र कुछ नैतिक शिक्षायें पायी जाती है। यानी जीवन से सम्बन्धित विस्तृत मार्गदर्शन तथा सम्पूर्ण जीवन व्यवस्था की धारणा नहीं पाई जाता। सन्यासी जीवन को ही आदर्श जीवन माना गया है। ईश्वर और उसके मार्गदर्शन से निस्पृहता के बाद जो रिक्तता उत्पन्न हुयी उसे गौतम बुद्ध की पूजा एवं उपासना से पूरा किया जाता है।

● जैन मत के संस्थापक महावीर स्वामी मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए सुपर नेचुरल माध्यम पर विश्वास नहीं रखते। यह मत ईश्वर का साफ इन्कार करता है। इस मत में भी कुछ नैतिक शिक्षायें दी गयी हैं। सन्यासी जीवन की श्रेष्ठता एवं महानता व्यक्त की गयी है। अर्थात् जैन मत में भी (बुद्धमत के समान) विस्तृत मार्गदर्शन और जीवन व्यवस्था के लिये नियम नहीं मिलते।

जैन मत और बुद्ध मत मानव जीवन के लिये मार्गदर्शन और इन्सानों की मुक्ति के लिये ईश्वर और उसके संदेष्टाओं तथा वही (ईशवाणी) की आवश्यकता को

स्वीकार नहीं करते। गौतमबुद्ध और महावीर की शिक्षाओं पर चलना ही मुक्ति का साधन माना गया है। ईश्वर के अलावा, दोनों धर्मो के संस्थापकों की उपासना और पूजा आम है।

● हिन्दु धर्म की बुनियाद यद्यपि चार वेदों पर है परन्तु वेदों के अतिरिक्त गीता, महाभारत, उपनिषद एवं पुराण आदि को भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। इस धर्म में सन्देष्टा, पैगम्बर तथा वही (प्रकाशना) की कल्पना नहीं है। कुछ लोग वेदों को ईश्वरीय ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। वेदों में अवतारवाद नहीं पाया जाता है परन्तु गीता एवं अन्य हिन्दू ग्रन्थों में मार्गदर्शन के लिये अवतारवाद की कल्पना पाई जाती है। यानी यह विश्वास स्वीकार किया गया है कि ईश्वर स्वयं इन्सानों के मार्गदर्शन के लिए तथा अन्याय को मिटाने और समाज सुधार के लिये मानव रूप में या किसी दूसरे रूप को ग्रहण करके पृथ्वी पर जन्म लेता है,विष्णु के अवतार रामचन्द्र जी, कृष्ण जी, परशुराम आदि स्वीकार किये गये हैं। नरसिंह (अर्धमानव, अर्धशेर) कछुआ, सुअर और मछली आदि भी उनके अवतार स्वीकार किये गये हैं। हिन्दु धर्म के विख्यात विचारक और मार्गदर्शक जैसे- प्रो० राधाकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द तथा पंडित वेद प्रकाश उपाध्याय आदि ने स्वीकार किया है कि अवतारवाद की धारणा वेदों में नहीं है। यहां तक कि अवतार का अर्थ ईश्वर का मानव के या किसी अन्य रूप में पृथ्वी पर अवतरित होना नहीं है

अपितु अवतार का अर्थ अवतरित या उतारा हुआ होता है। अर्थात ईश्वर किसी इन्सान को अपना प्रतिनिधि बनाता है, ताकि वह इन्सानों में सुधार का कार्य करे और अन्याय, अत्याचार तथा फसाद और बिगाड़ को दूर करे, यह व्याख्या ईशदूतत्व की धारणा के करीब है।

● मानव जीवन के मार्गदर्शन और हिदायत के लिए इस्लाम का दृष्टिकोण निम्न है :

इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिए ईश्वर ने उचित प्रबंध ईशदूतत्व (Prophethood) का किया है। इस प्रबन्ध में निम्न बातें सम्मिलित हैं :

1– इन्सान हिदायत और मार्गदर्शन के लिये ईश्वर ही का मुहताज है, क्यों कि वही इंसान का सृष्टा है और उसके बारे में हर प्रकार का ज्ञान रखता है।

2– इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिये ईश्वर ने जिन महान और पवित्र महापुरूषों का चयन किया वह नबी और पैगम्बर कहलाये। इन्सान के लिये व्यवहारिक आदर्श कोई इन्सान ही हो सकता है। नबी और पैगम्बर को ईश्वर का संदेश वही (प्रकाशना) के माध्यम से प्राप्त हुआ करता था। यह सन्देश ईश्वर के मार्गदर्शन और आदेशों पर आधारित होता था। नबियों और पैगम्बरों की शिक्षायें विश्वसनीय तथा प्रमाणित और निर्णायक होती थीं, क्यों कि वह ईश्वर द्वारा दिये गये वास्तविक ज्ञान के आधार पर उन बातों को प्रस्तुत करते थे। इसमें उनके किसी अनुमान, कल्पना, इच्छा या अभिरुचि का दखल नहीं होता था।

इसीलिए उनकी सारी बातें प्रत्येक सन्देह से परे और सत्य पर आधारित होती थीं। इस आधार पर ईशदूतों पर आस्था रखना और उनका आज्ञापालन तथा अनुसरण करना उनकी क़ौमों के लिए ज़रूरी था। संदेष्टा (रसूल) का इन्कार वास्तव में ईश्वर का इन्कार है। रसूल का अनुसरण और आज्ञापालन ईश्वर का आज्ञापालन और अनुसरण है। इसी प्रकार रसूल की अवज्ञा वास्तव में ईश्वर की अवज्ञा है।

3– यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अच्छाई और बुराई, पाप एवं पुण्य में अन्तर करने की क्षमता रखी गयी है परन्तु ये इन्सान जैसी अधिकार रखने वाला और एक सीमा तक स्वतन्त्रता और बुद्धि और विवेक रखने वाली प्राणी के लिये अपर्याप्त है। इसलिए ईश्वर ने इन्सान के मार्गदर्शन के लिये नबियों और पैगम्बरों का एक लम्बा सिलसिला स्थापित किया जो हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर ख़त्म हुआ।

4– नबी और पैगम्बर विभिन्न समुदायों और विभिन्न कालों में आते रहे। अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद सल्ल० हैं। मार्गदर्शन, सफलता और मुक्ति के लिये मुहम्मद सल्ल० पर ईमान लाना ज़रूरी है। क्योंकि पिछले नबियों और सन्देष्टाओं की शिक्षाओं तथा उन पर अवतरित ग्रन्थों में इतने परिवर्तन हुये हैं कि उनकी मूल शिक्षाओं का पता लगाना असम्भव है।

वर्तमान में मुहम्मद सल्ल० की शिक्षायें उनकी

जीवनी और उनका सन्देश इतिहास के पन्नों में बिल्कुल सुरक्षित है। मुहम्मद सल्ल० ने यह बात बताई है कि वह कोई नया सन्देश एवं विचित्र शिक्षायें नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं अपितु पिछले नबियों और सन्देष्टाओं ने अपनी-अपनी जातियों को जो ईश्वरीय संदेश दिया था उसको अंतिम संदेष्टा के रूप में पूर्ण रूप से समस्त मानव जाति के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं।

समीक्षा :-

इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय व्यवस्था के बारे में धर्मों की शिक्षाओं का संक्षिप्त विवेचन बताता है कि -

1- कुछ धर्म हिदायत और मार्गदर्शन के लिये ईश्वर, सन्देष्टा यानी पैगम्बर और वही (प्रकाशना) की आवश्यकता के बिल्कुल समर्थक नहीं हैं। उनके यहां मात्र कुछ नैतिक शिक्षायें हैं। आमतौर पर सन्यासी जीवन को आदर्श जीवन माना जाता है। एक सम्पूर्ण-जीवन व्यवस्था का कोई व्यवहारिक स्वरूप नहीं पाया जाता। वर्तमान में मानवीय समस्याओं के समाधान के लिये कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता। इन धर्मो में नैतिक शिक्षाओं पर अमल और ब्रह्मचर्य जीवन के फलस्वरूप मुक्ति की प्राप्ति की आशा की गयी है। जीवन-व्यवस्था के सम्बंध में यही उनकी कुल पूंजी है।

2- कुछ धर्म इन्सानों के मार्गदर्शन के लिये ईश्वर, वही और ईशदूतत्व को अनिवार्य मानते हैं, परन्तु जब हम

गहराई के साथ उन धर्मों की समीक्षा करते हैं तो उनके मध्य बड़ा अन्तर तथा मौलिक मतभेद सामने आते हैं उदाहरण के रूप में ईसाई धर्म में हज़रत आदम अलै० से लेकर हज़रत ईसा से पूर्व तक संदेष्टाओं यानी पैग़म्बरों को स्वीकार किया गया है। लेकिन हज़रत ईसा अलै० को ईश्वरत्व में सम्मिलित कर लिया गया है और अन्तिम ईशदूत (जो इसी श्रंखला के अन्तिम कड़ी हैं) का इन्कार पाया जाता है और उन पर अवतरित अन्तिम ग्रंथ क़ुरआन मजीद का भी इन्कार कर दिया गया है। ईसाई धर्म के अनुसार हज़रत ईसा (ईश्वरत्व) ईश्वर के पुत्र और तीन ईश्वरों में से एक ईश्वर हैं जबकि वास्तविकता यह है कि हज़रत आदम से लेकर हज़रत मुहम्मद सल्ल० तक समस्त पैगम्बरों और नबियों ने मात्र एकेश्वरवाद की शिक्षा दी है और अनेकश्वरवाद से पूर्णरूप से रोका है।

3- एक धर्म (इस्लाम) इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिये ईश्वर की ओर से की गयी व्यवस्था को ईश्वर की दया, न्याय एवं तत्वदर्शिता का तक़ाज़ा समझता है, इसलिये इस धर्म के अनुसार ईश्वर ने पहले दिन यानी मनुष्य के उदभवकाल से आदम अलै० और उनकी नस्ल की हिदायत और मार्गदर्शन के लिये निरन्तर पैगम्बरों और संदेष्टाओं को भेजा। इस्लाम में समस्त पैगम्बरों और अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद सल्ल० को मानना अनिवार्य हैं। इसी प्रकार पैगम्बरों और ईशदूतों पर जो ग्रन्थ ईश्वर ने अवतरित किये थे, उन सबको मानना

अनिवार्य है। परन्तु हज़रत मुहम्मद सल्ल० से पूर्व अवतरित ईशदूतों की पुस्तकें और शरीअतें (विधान) सब रद्द हो चुकी हैं इसलिये अब हिदायत और मार्गदर्शन तथा सफलता और मुक्ति हज़रत मुहम्मद सल्ल० के अनुसरण में निहित है और क़ुरआन मजीद को अपने जीवन के लिये हिदायत और मार्गदर्शन मानकर उसकी शिक्षाओं पर चलने से ही सफलता प्राप्त होगी।

यह समीक्षा बताती है कि धर्मों के मध्य इस महत्वपूर्ण मसले यानी इन्सानों की हिदायत और मार्गदर्शन के सम्बंध में सहमति नहीं पायी जाती। यह मतभेद भी सैधान्तिक और मौलिक हैं। इस प्रकार के मतभेद के बाद कोई नहीं कह सकता कि समस्त धर्म सच्चे हैं। इनमें कोई एक धर्म ही सच्चा हो सकता है, जो बुद्धि एवं मानव स्वभाव, इन्सान तथा जगत में पाई जाने वाली निशानियों के अनुरूप हो। सत्य धर्म की जिज्ञासा एवं खोज और उसके उपरान्त उसे स्वीकार करना हर उस व्यक्ति की जिम्मेदारी है जो अपने इस जीवन में सफलता का इच्छुक हो और पारलौकिक जीवन में नरक की अग्नि से बचाना चाहता हो।

मरणोत्तर जीवन की कल्पना :

जीवन की मूल धारणाओं के अन्तर्गत धर्मों की शिक्षाओं पर विचार करते हुये, एक महत्वपूर्ण समस्या मरणोत्तर जीवन की हमारे समक्ष आती है। मृत्यु के पश्चात जीवन है या नही? यदि है तो वहां सफलता एवं

मुक्ति का क्या रूप होगा? यदि जीवन नहीं है तो फिर क्या होगा ? ये मात्र कोई दार्शनिक का प्रश्न नहीं है किन्तु इस प्रश्न का इन्सान के आचरण और व्यवहारिक जीवन तथा उसके आचरण और कार्यशैली से गहरा सम्बंध हैं

कुछ लोगों ने सांसारिक जीवन को ही सब कुछ समझ लिया है और वे मृत्यु को मानव जीवन का अन्त समझते हैं। मृत्यु के बाद उनके नजदीक कुछ नही है। यह मात्र एक दावा है जिसकी कोई दलील नहीं है। कुछ लोगों का विचार है कि इस संसार में जो लोग विलासतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यदि मृत्यु के पश्चात कोई जीवन है तो वहाँ भी इसी प्रकार भोग विलास के साथ रहेंगे। कुछ दूसरे विचार भी इस सम्बंध से मौजूद हैं। हमें इस बात की समीक्षा करना है कि धर्मों में मरणोत्तर जीवन के बारे में जो धारणायें प्रस्तुत की गयी हैं। उनमें से किस धारणा को किस आधार पर सत्य स्वीकार किया जा सकता है?

हिन्दूमत, बुद्धमत, जैनमत और सिख मत में सामान्य रूप से आवागमन की धारणा पायी जाती है। हिन्दूमत की धारणा को तय करने में कठिनाई यह आती है कि वेदों में आवागमन का उल्लेख नहीं है, अपितु पारलौकिक जीवन में कर्मों की पूछगच्छ और फिर स्वर्ग एवं नरक की कल्पना प्रस्तुत की गयी है। वेदों में पित्र लोक की कल्पना भी मिलती है। पित्र लोक को ''आलमे बरज़ख'' कह सकते हैं। इनमें स्वर्ग एवं नरक की विस्तृत जानकारी मिलती है परन्तु गीता एवं पुराणों में आवागमन का उल्लेख

मिलता है। आवागमन का अर्थ यह है कि मृत्यु के उपरान्त कर्मों के आधार पर मनुष्य नया जन्म पायेगा।

इस नये जन्म में वह इन्सान, जानवर, कुत्ता, बिल्ली, भैंस, बैल, बकरी, गाय, कीड़ा-मकोड़ा, घास-फूस, सब्ज़ी आदि के रूप में जन्म ले सकता है। इसका दारोमदार इन्सान के कर्म पर है। जन्म और मृत्यु का यह चक्र चौरासी लाख योनियों को ग्रहण करने तक चलता रहता है। इसके पश्चात ही मुक्ति मिलेगी। मुक्ति का क्या रूप होगा और किस प्रकार प्राप्त होगी? इस बारे में सहमति नहीं पाई जाती ।

ईसाई धर्म में मरणोत्तर जीवन की धारणा पाई जाती है। सफलता और मुक्ति के लिये सांसारिक जीवन में ईसा मसीह को ईशपुत्र मान कर सूली पर जान देने के अक़ीदे और विश्वास को स्वीकार करना अनिवार्य है। इनके लिये जीवन में धार्मिक नियमों का पालन अनिवार्य नहीं, बल्कि इस विश्वास के साथ धार्मिक नियमों की निरस्तता की कल्पना पाई जाती है। स्वर्ग एवं नरक की कल्पना भी पाई जाती है।

इस्लाम में मरणोत्तर जीवन के बारे में स्पष्ट शिक्षायें मिलती हैं। यह विश्वास इस्लाम का तीसरा मौलिक विश्वास कहलाता है, यानी परलोक पर विश्वास। इसके अनुसार इन्सान अपने सांसारिक जीवन के लिये अल्लाह के समक्ष उत्तरदायी है। ईमान और सत्कर्मों के आधार पर पुरस्कार के स्वरूप स्वर्ग मिलेगा और झूठे विश्वास तथा

बुरे कार्यों के आधार पर दंड और प्रकोप से दो-चार होगा। कोई सिफारिश अथवा मित्रता काम नहीं आयेगी। ईश्वर का निर्णय दोटूक और निष्पक्ष होगा। महाप्रलय के दिन समस्त मानवजाति को ईश्वर के समक्ष उपस्थित होकर उपरोक्त परिणाम का सामना करना होगा। कुरआन में कहा गया है :

''प्रलय के दिन वह तुम सबको अवश्य एकत्र करेगा। यह बिल्कुल एक असंदिग्ध वास्तविकता है। परन्तु जिन लोगों ने अपने आपको खुद बर्बादी के जोख़िम में डाल लिया है। वह उसे नहीं मानते। (सूरह अनआम-12)

''नुकसान में पड़ गये वह लोग जिन्होंने ईश्वर से अपनी भेंट की सूचना को झूठ बताया। जब अचानक वह घड़ी आ जायेगी तो यही लोग कहेंगे ''अफसोस हम से इस बारे में कैसी गलती हुई और उनका हाल यह होगा कि अपनी पीठों पर अपने गुनाहों का बोझ लादे हुये होंगे। देखो ! कैसा बुरा बोझ है जो यह उठा रहे हैं। दुनिया की ज़िन्दगी तो खेल और एक तमाशा है। वास्तव में आखिरत ही की जगह उन लोगों के लिये बेहतर है जो नुकसान से बचना चाहते हैं। फिर क्या तुम लोग विवेक से काम न लोगे''। (सूरह अनआम- 31-32)

मुर्दों को पुनः जीवित करने के बारे में कुरआन में है-

''और अल्लाह की निशानियों में से एक यह है कि तुम देखते हो ज़मीन सूनी पड़ी हुई है फिर ज्यों ही हमने उस पर पानी बरसाया, अचानक वह भभक उठती हैं और

फूल जाती है यक़ीनन के अल्लाह इस मरी हुई ज़मीन को जिला उठाता है, वह मुर्दों को भी जीवन प्रदान करने वाला है। यकीनन उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।
(सूरह हाम-मीम सज्दा-39)

परलोक (आखिरत) में क्या होगा ? इस बारे में कुरआन में विस्तार से रोशनी डाली गयी है, एक स्थान पर कहा गया है :

''और डरो उस दिन से जब कोई किसी के तनिक काम न आयेगा, और न किसी की ओर से सिफारिश कुबूल होगी, न किसी को जुर्माना लेकर छोड़ा जायेगा और न अपराधियों को कहीं से सफलता मिल सकेगी।''
(सूरह बक़रा- 48)

''कियामत के दिन न तुम्हारी नातेदारिया किसी काम आयेंगी न तुम्हारी सन्तान। उस दिन अल्लाह तुम्हारे बीच जुदाई डाल देगा। और वही तुम्हारे कर्मो का देखने वाला है। (सूरह मुम्तहना- 3)

''उस दिन आदमी अपने भाई और अपनी मॉ और अपने बाप अपनी पत्नी और अपनी औलाद से मागेगा। उनमें से हर व्यक्ति पर उस दिन ऐसा समय आ पड़ेगा कि उसे अपने सिवा किसी का होश न होगा। (सूरह अबस- 34-37)

समीक्षा-

मरणोत्तर जीवन के सम्बंध में विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं के इस विश्लेषण के बाद निम्न परिणाम सामने आते हैं-

1– धर्मों की मौलिक धारणाओं में अत्यधिक मतभेद और स्पष्ट अन्तर पाये जाते हैं। इन विचारों में परस्पर सहमति नहीं है।

2– एक ही समय में ये सारी धारणायें सही और सत्य पर नहीं हो सकतीं। इनमें से जो धारणा सही और सत्य पर हैं उसकी खोज़ अनिवार्य है।

3– दुनिया में इन्सान का विश्वास और उसके व्यवहारिक जीवन की दिशा, उसका रवैया उसकी कार्य प्रणाली, एवं व्यवहारिकता, ईश्वर और बन्दों के अधिकारों एवं कर्तव्यों की अदायगी के बारे में उसकी तत्परता, इन्हीं धारणायों के स्वीकार या इन्कार पर निर्भर है। विभिन्न धारणाओं के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सामाजिक और नैतिक नमूने अस्तित्व में आते हैं।

उपरोक्त मौलिक धारणाओं के अतिरिक्त कुछ और बिन्दुओं के सिलसिले में भी अत्यधिक मतभेद, धर्मो के मध्य पाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में निम्न बिन्दुओं का उल्लेख किया जा सकता है।

- मानव जीवन का उद्देश्य
- उपासना पद्धति
- मानव समानता

विभिन्न धर्मों के इन मतभेदों से अवगत होने के पश्चात कोई नही कह सकता कि उनमें से किसी भी धर्म को ग्रहण करना, समान रूप से सही और सत्य होगा और इनमें से किसी के भी अनुसार व्यवहारिक जीवन व्यतीत

करके इन्सान ईश्वर को राज़ी और खुश कर सकता है। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन भिन्न-भिन्न धारणाओं में से कौन सी धारणा ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी है जिसे ग्रहण करने से वह बन्दों से राज़ी और खुश होगा। इसकी खोज एवं शोध, ज्ञान और तर्क, बुद्धि एवं विवेक के आधार पर हर व्यक्ति की जिम्मेदारी है। इस शोध और खोज के परिणाम भी स्वयं उसी के हिस्से में आयेगें। जो धारणायें इन्सानों या किसी समुदाय द्वारा निर्मित हैं सम्भव है कि उनको ग्रहण करना बज़ाहिर किसी न किसी धर्म पर अमल करना समझा जायेगा परन्तु विचार करना चाहिये कि क्या यह रवैया ईश्वर से बग़ावत और उसकी अवज्ञा का नहीं है? इस सतही विचार शैली के फलस्वरूप इन्सान संसार में सुख व शान्ति, विकास एवं संपन्नता तथा चैन व सुकून कैसे पा सकता है ? और परलोक में सफलता और मुक्ति उसे क्यों कर प्राप्त हो सकती है।

"सभी धर्म समान है" का एक महत्वपूर्ण पहलू

सवधर्म सम्भाव के विषय पर एक और पहलू से विचार करना ज़रूरी है। धार्मिक ग्रन्थों से यह महत्वपूर्ण सच्चाई भी सामने आती है कि ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश, हवा, पानी, पेड़-पौधे और जानवर आदि को समस्त मानव जाति की भलाई और फायदे के लिये बनाया है। इन नेमतों को किसी विशेष समुदाय, जाति और देश के लिये सीमित नहीं किया, बल्कि उन्हें समस्त मानव जाति के लिए आम कर दिया है। इसलिए हम देखते हैं कि समस्त मानव जाति, चाहे वह अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक, किसी भी रंग रूप और वर्ग, भाषा तथा क्षेत्र के हों, धनी हों या निर्धन, शिक्षित हो या अशिक्षित सभी इन नेमतों से लाभान्वित हो रहे हैं। क्योंकि वह मानव-जीवन की रक्षा और उसके विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। मानो ईश्वर ने मानव जीवन की इन भौतिक और शारीरिक अवश्यकताओं को बिना किसी अपवाद के सभी को प्रदान किया। यदि वह किसी जाति एवं देश को इन सुविधाओं से वंचित रखता तो यह उसके न्याय, दया, तत्वदर्शिता के बिल्कुल विरुद्ध होता । परन्तु उसने ऐसा होने नहीं दिया। अब विचार कीजिये कि इन्सान की केवल यही आवश्यकतायें तो नहीं हैं, बल्कि उसकी अध्यात्मिक और नैतिक जीवन उसके भौतिक जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है। इस बारे में वह हिदायत और मार्गदर्शन (धर्म) का मुहताज है। क्या ऐसा सम्भव है कि ईश्वर एक

विशेष समुदाय या वर्ग को धर्म प्रदान करके शेष मानव जाति को वंचित कर दें। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो यह बहुत बड़ा अन्याय होता। ईश्वर तो न्याय करने वाला है, वह किसी पर तनिक भी ज़ुल्म नहीं करता। इसलिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने इन्सान की हिदायत और मार्गदर्शन के लिए जो भी धर्म प्रदान किया है, वह किसी समुदाय या जाति एवं वर्ग या देश के लिए नहीं, अपितु समस्त मानव जाति को प्रदान किया है जिस प्रकार उसकी उपरोक्त नेमतों पर किसी एक समुदाय या वर्ग का एकाधिकार नहीं है। उसी प्रकार उसके मार्गदर्शन पर भी किसी का एकाधिकार नहीं है।

ईश्वर की प्रदान की हुई नेमतों की गणना सम्भव नहीं है। इनमें मानवजाति के लिये अनगिनत फ़ायदे हैं। उसकी हिदायत और मार्गदर्शन भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए है जो उसे अपनाता है, अनगिनत फायदे अपने अन्दर रखता है। और हर प्रकार के नुकसान तथा बुराइयों से उसे सुरक्षित रखता है। ईश्वर की नेमतों में बन्दों के लिए उसका मार्गदर्शन (धर्म) सर्वश्रेष्ठ और अमूल्य नेमत है जिसको स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप चैन व सुकून, सुख व शान्ति, विकास एवं निर्माण के रूप में सामने आयेंगे। और इन्सान अशान्ति, उपद्रव एवं बिगाड़ से सुरक्षित रहेगा।

ईश्वर की यह हिदायत और मार्गदर्शन आज कहां है ? किन के पास है? जिनके पास भी यह नेमत है वह

उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नही है। बल्कि वह इन्सानियत की धरोहर है जिन लोगों के पास यह नेमत मौजूद है, उनकी जिम्मेदारी है कि वह हृदय से उसका आदर करें और उसे अपना कर अपनी ज़िन्दगियों को कामभाव बनाये। साथ ही दूसरों के सामने उसका परिचय करायें, उसको समस्त मानव जाति के लिये आम कर दें। क्यों कि वह न इसके मालिक हैं न ठेकेदार बल्कि मात्र धरोहर रक्षक (Custodian) हैं इस बारे में लापरवाही दिखाने से उस समुदाय से परलोक में सख्त पूछगच्छ होगी, जिनके पास आज दुनिया में हिदायत और मार्गदर्शन मौजूद है।

अब विचार कीजिये कि यह हिदायत और मार्गदर्शन कहाँ है? सबसे पहले तो हमें देखना चाहिये कि दुनिया के धर्मों में क्या किसी धर्म ने यह दावा किया है कि वह अकेले ईश्वर की ओर से है तथा समस्त मानवजाति के लिये है? उस धर्म की पुस्तक या पुस्तकों में जो मार्गदर्शन तथा शिक्षायें पायी जाती हैं क्या वह उस दावे की पुष्टि करती हैं? क्या वह शिक्षायें विश्वव्यापी, सार्वकालिक और सैधान्तिक है। पिछले पन्नों में सत्य धर्म की जिन विशिष्टताओं का उल्लेख किया जा चुका है, क्या वह विशिष्टतायें इस धर्म में पाई जाती हैं? दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मानव इतिहास में उस धर्म को क्या कभी किसी व्यक्ति की ओर सम्बद्ध किया गया है? या वह सदैव इस बात का दावेदार रहा कि वह ईश्वर की ओर से है ? एक और प्रश्न यह है कि इसको प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति

और व्यक्तियों ने क्या इस धर्म को अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व की ओर सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया, या इसके विपरीत यह दावा किया कि वह अपनी ओर से नहीं, बल्कि ईश्वर की ओर से उसे प्रस्तुत कर रहे हैं? और यह भी देखना होगा कि दावा करने वाले कैसे लोग थे ? यह सच्चे ईशभक्त या पुनीत आत्मा थे? क्या इन्सानों की अच्छाई व भलाई तथा सफलता एवं कल्याण के लिये कार्य करने वाले थे ? या उनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ इस धर्म की ओर इन्सानों को बुलाने में निहित था ? क्या वह कहते थे कि हम तुम्हारे शुभचिन्तक हैं, हम कोई इनाम या पुरस्कार नहीं मांगते। और ईश्वर के आदेश से तुम्हारी सफलता और मुक्ति के लिए यह संदेश और शिक्षा तुम तक पहुंचा रहे हैं। हमारा निस्स्वार्थ और निर्दोष होना हमारे सन्देश की सत्यता की सबसे बड़ी दलील है। हम तुम्हें दावत देने से पूर्व उस शिक्षा पर खुद भी अमल करते हैं। हमारा बदला ईश्वर हमें देगा। और तुम ऑखें बन्द करके उसको स्वीकार करने या इन्कार करने का तरीक़ा मत अपनाओं बल्कि खूब विचार विमर्श करो और अपनी सफलता और मुक्ति की खातिर स्वतन्त्र फ़ैसला करो।

आज इन्सान की गम्भीर समस्यायें और उसकी बिगड़ी हुई सामाजिक परिस्थितियां इंगित कर रही हैं कि इन्सानों द्वारा गढ़े हुये धर्म एवं विचारधारायें सब विफल हो चुकी हैं। इन्सान संकटों से घिरा है। उसका जीवन अजीर्ण हो चुका है। मानव जाति की समस्याओं का मात्र निवारण

ईश्वरीय विधान और ईश्वरीय फार्मूला से ही सम्भव है। इसलिए इन्सान को चाहिए कि किसी नये धर्म या विचारधारा को गढ़ने के बजाये ईश्वर के सच्चे धर्म की खोज करे और अपने जीवन में उसे स्वीकार करें। इसके बाद ही उसके जीवन का संकट समाप्त होगा और वह सफल जीवन व्यतीत कर पारलौकिक जीवन में मुक्ति और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त कर नरक के प्रकोप से सुरक्षित रह सकेगा।

क़ुरआन का मार्गदर्शन :–

सभी धर्मों के सच्चे होने या न होने के बारे में क़ुरआन का मार्गदर्शन बहुत महत्वपूर्ण है। इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

क़ुरआन आज से 1450 वर्ष पूर्व हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर अवतरित हुआ। आप सल्ल० क़ुरआन के लेखक नहीं हैं। क़ुरआन में प्रारम्भ से अन्त तक बताया गया है कि उसे अल्लाह ने अवतरित किया है। यह चुनौती भी दी गयी है कि जो लोग उसे ईश्वरीय वाणी और ईशग्रन्थ स्वीकार नहीं करते वह इस जैसी एक छोटी सी एक सूरह (अध्याय) ही बना कर दिखायें।

क़ुरआन ने एक विशेष बात यह बताई है कि पिछले धर्म ग्रन्थों में जो ईश्वर की ओर से अवतरित किये गये थे, उनमें से कोई भी सुरक्षित नही रहा। उन ग्रन्थों के अनुयाईयों ने उन ईश्वरीय ग्रंथों में मनगढ़ंत व्याख्याओं को सम्मिलित कर दिया और घटा–बढ़ा दिया दी। अब उनके माध्यम से ईश्वर की मूल शिक्षायें मालूम नहीं हो सकतीं।

परन्तु क़ुरआन न केवल सुरक्षित है बल्कि पिछले ग्रन्थों की मूल शिक्षाओं का सार उसमें मौजूद है और उसमें उनको परखने की कसौटी भी मौजूद है। इसीलिए पिछले ईश्वरीय ग्रन्थों पर ईमान तो लाया जायेगा परन्तु व्यवहारिक रूप से मार्गदर्शन उनसे प्राप्त नहीं किया जा सकता बल्कि अब केवल क़ुरआन ही अकेला मार्गदर्शन ग्रन्थ है।

मानव जाति के लिये क़ुरआन के निम्नलिखित मार्गदर्शन पर विचार करना चाहिये–

1– अल्लाह के निकट दीन (धर्म) केवल इस्लाम है। (सूरह आलेइमरान– 19)

2– अब क्या ये लोग ईश्वर के आज्ञापालन का तरीक़ा छोड़ कर कोई और तरीक़ा चाहते हैं, हालांकि आकाशों और धरती की सारी चीज़ें चाहे–अनचाहे ईश्वर के आदेशानुसार चल रही है। और उसी की ओर सबको पलटना है। (सूरह आले इमरान– 83)

3– इस्लाम के सिवा जो व्यक्ति कोई और तरीका अपनाना चाहे उसका वह तरीका हर्गिज़ स्वीकार न किया जायेगा और परलोक में वह असफल रहेगा। (सूरह आले इमरान– 85)

4– आज मैंने तुम्हारे दीन (धर्म) को तुम्हारे लिये पूर्ण कर दिया है और तुम पर अपनी नेमत पूरी कर दी है और तुम्हारे लिये इस्लाम को तुम्हारे धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया है। (सूरह अलमाइदा–3)

क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद सल्ल० के कथनों से

ज्ञात होता है कि इन्सानों के लिये इस्लाम ईश्वर का प्रदान किया हुआ धर्म है। इसका संस्थापक कोई इन्सान, रसूल अथवा नबी नहीं है। यहां यह ग़लतफ़हमी न हो कि इस्लाम का उद्‌भव आज से 1450 वर्ष पूर्व अरब में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के आगमन से हुआ, या पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० उसके संस्थापक हैं, अपितु हज़रत आदम अलै० और उनकी सन्तान को ईश्वर ने पहले दिन से यही धर्म प्रदान किया था। उसी धर्म को व्यापकता एवं सम्पूर्णता के साथ अन्तिम रूप में हज़रत मुहम्मद सल्ल० को प्रदान किया गया।

इस्लाम के दो अर्थ हैंः एक अमन व शान्ति, दूसरा अपने आपको ईश्वर की इच्छा के अधीन कर देना। मुस्लिम ईश्वर की सम्पूर्ण आज्ञापालन और समर्पण करने वाले को कहते हैं। इस्लाम कोई नस्ली और क़ौमी धर्म नहीं है।

इस्लाम के विपरीत जो कार्य-प्रणाली है वह अधर्म और अनेकेश्वरवाद कहलाता है। अनेकेश्वरवाद के सम्बंध से क़ुरआनी आयतों के हवाले दिये जा चुके हैं। अब अधर्म के बारे में निम्नलिखित क़ुरआनी आदेशों पर विचार करें।

''यक़ीन रखो, जिन लोगों ने कुफ़्र और अधर्म को अपनाया और अधर्म ही की दशा में मरे, उनमें से कोई अगर अपने को सज़ा से बचाने के लिये धरती भर कर भी सोना बदले में दे तो उसे स्वीकार न किया जायेगा। ऐसे लोगों के लिये दर्दनाक सज़ा तैयार है और वे अपना कोई मदगार न पायेंगे। (सूरह आले इमरान- 91)

क़ुरआन में दूसरी जगह आदेश है :

''जिन लोगों ने इन्कार का रास्ता अपनाया है उनके लिये सांसारिक जीवन बड़ा प्रिय और दिलपसन्द बना दिया गया हैं। ऐसे लोग ईमान वालों की हंसी उड़ाते हैं मगर कियामत के दिन परहेज़गार लोग ही उनके मुक़ाबले में ऊँचे स्थान पर होंगे। रही दुनिया की रोज़ी तो अल्लाह को अधिकार है जिसे चाहे बेहिसाब प्रदान करे।

(सूरह बकरा- 212)

दूसरे धर्म किस प्रकार अस्तित्व में आयेः-

कुछ धर्म ऐतिहासिक व्यक्तित्वों से जुड़े हैं, जैसे बुद्ध धर्म तथा जैन धर्म। बुद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध हैं और जैनधर्म के संस्थापक महावीर जैन हैं।

लगभग ढाई हज़ार वर्ष इन धर्मों की स्थापना पर व्यतीत हो चुके हैं परन्तु आज हम इस स्थिति में नहीं हैं कि उनके वास्तविक सन्देश और शिक्षाओं को जान सकें। क्या इन दोनों महापुरूषों ने वास्तव में यह शिक्षा दी थी कि जगत और मानव का कोई सृष्टा नहीं है ? उसने इन्सानों के मार्गदर्शन का कोई प्रबन्ध नहीं किया। चुनांचे हम व्यवहारिक रूप में दखते हैं कि बुद्धमत और जैनमत के अनुयायियों में ईश्वर से निस्पृहता बरतने के बाद गौतम बुद्ध और महावीर जैन दोनों को ही व्यवहारिक रूप से ईश्वर के स्थान पर रखा गया है। उनकी मूर्तियों अथवा प्रतिमाओं की पूजा की जाती है। उनसे वैसी ही प्रेम एवं आस्था रखी जाती है जैसी ईश्वर के साथ होनी चाहिये। इनसे प्रार्थनायें भी की जाती हैं और आशायें भी उन्हीं से

की जाती हैं।

इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि यह दोनों धर्म ढाई हज़ार वर्ष पूर्व से मौजूद हैं, तो इससे पूर्व जो इन्सान पृथ्वी पर बसते थे, उनके मार्गदर्शन का क्या प्रबंध था ? उनके लिये कौन सा धर्म था जिस का लोग अनुसरण करते थे। यद्यपि जैनधर्म में यह दावा है कि चौबीस तीर्थकर गुज़र चुके हैं और जैनधर्म सबसे प्राचीन और इन्सानों का प्रथम धर्म है लेकिन इस दावे के लिए कोई सुबूत नहीं दिया जा सकता।

गौतम बुद्ध और महावीर जैन दोनों ऐतिहासिक रूप से इन्सान थे। इन्सानों की सारी विशेषतायें खाना, पीना, सोना, जागना, स्वस्थ, बीमारी तथा मृत्यु का उनके जीवन में अवलोकन किया जा सकता है। तो इसके बाद उन्हें ईश्वर के स्थान पर कैसे बिठाया जा सकता है? इन दोनों महापुरूषों ने यह नहीं कहा कि वह स्वयं ईश्वर हैं, और उनकी पूजा और उपासना की जाये या उनसे प्रार्थना की जाये आदि। अब देखें कि ईसाई धर्म कैसे अस्तित्व में आया ?

ईसाई धर्म के मूल विश्वासों का उल्लेख हो चुका है। क्या इन विश्वासों के साथ बाइबिल में ईसाई धर्म की कोई कल्पना पाई जाती है ? इनका उत्तर नकारात्मक में है। यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि हज़रत ईसा अलै० के लगभग सत्तर या सौ वर्षों बाद सैन्टपाल ने वर्तमान ईसाई धर्म की बुनियाद डाली और उसे हज़रत ईसा अलै० से

जोड़ दिया। बाइबिल के अनुसार हज़रत ईसा स्वयं एक ईश्वर की उपासना करते थे। उन्होंने तीन ईश्वरों की कोई कल्पना प्रस्तुत नहीं किया था। 325 ई० में नैक़िया की कौंसिल रोम के बादशाह की अध्यक्षता में रखी गयी, इसमें ईसाई धर्म के धर्म गुरुओं ने हज़रत ईसा को ईशदूत होने तथा स्वयं ईश्वर होने का विश्वास ग्रहण करके उसको सरकारी विश्वास बना दिया। 325 से पूर्व हज़रत ईसा के बारे में इस बात पर सहमति नहीं पाई जाती जो कि वह ईशपुत्र हैं और तीन ईश्वरों में से एक है। इसी प्रकार यहूदी धर्म हज़रत मूसा अलै० से जोड़ दिया गया है परन्तु ओल्ड टेस्टामेन्ट में हज़रत मूसा अलै० किसी नये धर्म के संस्थापक नज़र नहीं आते बल्कि वह एक ईश्वर की ग़ुलामी और उसके आदेशों पर चलने की दावत देते है। हज़रत मूसा अलै० के बाद उनके समर्थकों ने एक नये धर्म गढ़कर कर उनसे जोड़ दिया जो आज यहूदीयत (Judaism) के नाम से जाना जाता है।

निर्णय इन्सान के हाथ में है :–

क़ुरआन के अनुसार इस्लाम ही ईश्वर का प्रमाणित धर्म है। ईश्वर ने बहुत सारे धर्म इन्सान को नहीं दिये हैं। उसने यह नहीं कहा है कि किसी भी धर्म पर चलो, वह तुम से प्रसन्न हो जायेगा बल्कि यह विस्तार से ऊपर गुज़र चुका है कि धर्म किस प्रकार अस्तित्व में आये अथवा निष्पादित किये गये। सांसारिक सफलता कल्पना, विकास, सम्पन्नता तथा पारलौकिक मुक्ति तो इन्सानों को एक ऐसे

धर्म में ही मिलेगी जिसे ईश्वर की स्वीकृति प्राप्त है। परन्तु किसी भी इन्सान को इसे ग्रहण करने पर मजबूत नहीं किया जा सकता। लालच अथवा ज़ोर–जबरदस्ती से धर्म को किसी पर थोपा नहीं जा सकता। इस सम्बंध में क़ुरआन के स्पष्ट निर्देश निम्न हैं–

1– धर्म में कोई ज़ोर–ज़बरदस्ती नहीं है–

(सूरह बकरा 256)

2– (ऐ पैगम्बर) साफ कह दो कि यह सत्य है तुम्हारे रब की ओर से अब जिसका जी चाहे उसे मान ले जिसका जी चाहे उसे इन्कार कर दे। (सूरह कहफ़–29)

3– हम ने उसे रास्ता दिखा दिया चाहे वह कृतज्ञता दिखाने वाला बने या इन्कार करने वाला। (सूरह दहर– 3)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि क़ुरआन इस्लाम को ईश्वरीय धर्म कहता है, परन्तु इसको स्वीकार करने या इन्कार करने का पूरा अधिकार और आजादी इन्सान को देता है। इस अधिकार और आजादी को कोई छीन नहीं सकता। परन्तु वह इन्सान पर स्पष्ट करता है कि इस्लाम के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म ईश्वर स्वीकार नहीं करेगा। इस संसार में इस्लाम को छोड़कर किसी भी धर्म के अनुपालन का परिणाम पृथभ्रष्टता, अशान्ति, उपद्रव, बिगाड़ तथा अन्याय और ज़ुल्म के रूप में सामने आयेगा। इस जीवन के उपरान्त परलोक में भी इन्सान को भयानक विफलता तथा नरक की अग्नि का सामना होगा।

इस विस्तृत विवरण के बाद प्रश्न यह उठता है कि

अन्य धर्मों और उनके अनुयाइयों के सम्बन्ध से इस्लाम की शिक्षा क्या है ? क्या अन्य धर्मों को इस्लाम अपना शत्रु एवं विरोधी समझता है और उन धर्मो के अनुयाइयों को अपना शत्रु मानता है? क्या इनको जीवन-आस्था और कर्म के सिलसिले में मानव स्वतन्त्रता से वंचित करता है ? या वह प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की ज़मानत देता है और विश्वास एवं कर्म की स्वतन्त्रता प्रदान करता है? इसलिए इस सम्बंध में अगले पन्नों में कुछ विवरण प्रस्तुत किये जायेंगे।

एक महत्वपूर्ण वास्तविकता :-

पिछली गुफ्तगू से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईश्वर की ओर से पैगम्बरों और नबियों के माध्यम से प्रारम्भ में इन्सानों को एक ही धर्म प्रदान किया गया था। और उस पर अमल भी होता रहा लेकिन बाद में लोगों ने विभिन्न कारणों से आपस में मतभेद पैदा करके भिन्न-भिन्न धर्म बना लिये। क़ुरआन की निम्नलिखित आयतें इस वास्तविकता पर प्रकाश डालती हैं।

''शुरू में सब लोग एक ही तरीक़े पर थे। (फिर यह हालत बाकी न रही और विभेद प्रकट हुये) तब ईश्वर ने नबी भेजे जो सीधे मार्ग पर चलने वालों को खुशखबरी देते और टेढ़ी चाल चलने वालों को बुरे अंजाम से डराते थे और उनके साथ सत्य पर आधारित पुस्तक उतारी ताकि सत्य के बारे में लोगों के बीच जो विभेद उत्पन्न हो गये थे उनका फैसला करे (और इन विभेदों के प्रकट होने का

कारण यह था कि शुरू के लोगों को सत्य का ज्ञान कराया ही नहीं गया था) विभेद उन लोगों ने किया जिन्हें सत्य का ज्ञान दिया जा चुका था। उन्होंने स्पष्ट आदेश पा लेने के बाद केवल इसलिए सत्य को छोड़ कर विभिन्न रास्ते निकाले कि वे आपस में ज़्यादती करना चाहते थे। अतः जिन लोगों ने पैगम्बरों को माना, उन्हें ईश्वर ने अपनी अनुमति से उस सत्य का रास्ता दिखा दिया, जिसमें लोगों ने विभेद किया था। ईश्वर जिसे चाहता है, सीधा मार्ग दिखा देता है। (सूरह बकरा–213)

मुसलमानों की जिम्मेदारी :–

इस्लाम समस्त मानवजाति के लिए ईश्वर द्वारा प्रदान किया हुआ धर्म है। क़ुरआन मजीद और हज़रत मुहम्मद सल्ल० सारे इन्सानों के लिये हैं। इस्लाम के सबसे पहले ईशदूत हज़रत आदम (अलै०) थे और अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं। आप सल्ल० पर जो किताब उतारी गयी, यानी क़ुरआन मजीद और आप (सल्ल०) की जीवनी और शिक्षायें सुरक्षित हैं। ईश्वर ने स्वयं आपको अपना अन्तिम ईशदूत बताया है। आप (सल्ल०) ने इस्लाम की बुनियाद पर एक आदर्श समाज स्थापित किया था जिसका विस्तृत विवरण इतिहास में सुरक्षित है।

ज़रूरी है कि मुसलमान इस्लाम के सम्बंध से अपने दिल दिमाग को केन्द्रित करें। इस नेमत (उपहार) पर अल्लाह का शुक्र अदा करें। अपनी इस स्थित पर विचार

करें कि दुनिया में इस समय यह नेमत (इस्लाम) सिर्फ उन्हीं के पास है। लेकिन यह एक अमानत (धरोहर) है जिसे अविलम्ब सारे इन्सानों और देशवासियों तक अपने कथनों और कर्मों तथा सामूहिक आचरण के माध्यम से पहुंचाना चाहिये। यदि वह बेपरवाई दिखायेगें तो उन्हें परलोक में गम्भीर परिणाम भुगतना होगा। क्योंकि सारे इन्सानों को नरक की आग से बचना उन तक इस्लाम की दावत के पहुँचने पर निर्भर है।

मुसलमानों में यदि किसी को यह गलतफ़हमी है तो उसको दूर कर लेना चाहिये कि सारे धर्म ईश्वर की ओर से अवतरित हैं और सभी सच्चे हैं। याद रहे कि केवल इस्लाम ईश्वर की ओर से है। जब यह सत्य है तो उन्हें तन मन धन से इस्लाम की दावत एवं प्रचार को अपने जीवन का मिशन बनाना चाहिये। उन्हें लोगों को खुश करने के लिए इस बात की घोषणा नहीं करना चाहिये कि सारे धर्म सच्चे हैं। इतनी ग़लत और सत्य-विरोधी बात कहते हुये, उन्हें ईश्वर का डर और खौफ रखना चाहिये। आज बहुत से नादान मुसलमान विभिन्न उद्देश्यों एवं स्वार्थ के लिये इस्लाम की हिदायत और मार्गदर्शन को छोड़कर अपने और देशवासियों की विभिन्न संगठनों, संस्थाओं तथा आन्दोलनों में सक्रिय हैं। उनके प्लेटफार्म, उनके सम्मेलनों, जनसभाओं, गोष्ठियों और बैठकों में ग़लत विचारधाराओं, दर्शनों, नीतियों और कार्यक्रमों को सारी समस्याओं का समाधान तथा सफलता एवं सर्वोच्चता का नुस्खा बताते हैं।

यह नसीहत का मुक़ाम है। क्योंकि मात्र अकेला और वास्तविक समाधान केवल इस्लाम और मुहम्मद सल्ल० के मार्गदर्शन और शिक्षाओं में निहित है। यदि वह इस सच्चाई को इन्सानों से छुपाते हैं तो ये उनकी गुमराही के लिये स्वयं उत्तरदायी ठहराये जायेंगे। यह भी स्पष्ट रहे कि अब तक उपरोक्त गतिविधियों का नतीजा सीमित था, सांसारिक और भौतिक लाभ की प्राप्ति के सिवा कुछ नहीं निकला जो परलोक में विफलता एवं घाटे का सौदा है।

इन्सानों द्वारा निष्पादित विचारधारायों, दर्शनों और धर्मों से आज तक मानवता का न कोई कल्याण हुआ और न ही किसी समस्या का समाधान हो सका। बल्कि समस्यायें पहले से अधिक जटिल होती चली गयीं। विश्व की दो बड़ी विचारधारायों साम्यवाद तथा पूंजीवाद के कुप्रभावों और उसके विनाशकारी परिणाम से आज भी इन्सानियत जूझ रही है।

धर्मों के मध्य संवाद : (Inter faith dialogue)

वर्तमान में धर्मों के अनुयाईयों के मध्य एक दूसरे को समझने और समझाने तथा सही स्थिति से अवगत होने के लिये ''धर्मों के मध्य संवाद'' के शीर्षक से कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसे (Inter religious) प्रोग्राम भी कहा जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रम का आयोजक समाज में शान्ति और भाईचारा स्थापित करने तथा सुख-शान्ति के लिए ज़रूरी है। हमारे विचार से ''धर्मों के मध्य संवाद'' के निम्नांकित उद्देश्य होने चाहिये :

1– विभिन्न धर्मों के अनुयाइयों के मध्य निकटता स्थापित हो। एक दूसरे के बारे में उनकी ग़लत फहमियां दूर हों और एक दूसरे के निकट आयें।

2– धर्मों के मध्य सामान्य मूल्यों कों इंगित किया जाये, ताकि उनकी बुनियाद पर धर्मों के अनुयायी परस्पर मिलजुल कर रहें और उनके दरम्यान इन्सानी भाईचारा, अमन व शान्ति और आपसी विश्वास पैदा हो।

3– धर्मों को जैसा कि वह हैं, वैसा ही समझा और जाना जाये। भेदभाव और संकीर्णता के आधार पर किसी धर्म की वास्तविकता जानने और समझने में बाधा न उत्पन्न की जाये।

4– संवाद का एक महत्वपूर्ण और मूल उद्देश्य यह होना चाहिये कि मानव जीवन के प्रारम्भ में ही ईश्वर ने जो हिदायत और मार्गदर्शन प्रदान किया था, उसकी तलाश और खोज की जाये। ईश्वरीय मार्गदर्शन इन्सानों तक पहुँचाने के लिए पैगम्बरों और नबियों का सिलसिला हज़रत आदम अलै० से प्रारम्भ होकर अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर ख़त्म हुआ। इन समस्त पैगम्बरों और नबियों ने जो शिक्षा, संदेश और मार्गदर्शन इन्सानों को प्रदान किया, उसे जानने की कोशिश करना प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी है। ऐसा करना मानव कल्याण एवं मुक्ति के लिये ज़रूरी है। यद्यपि पैगम्बरों और संदेष्टताओं की जीवनी और उन पर अवतरित पुस्तकें सुरक्षित नहीं रहीं परन्तु अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद

सल्ल० पर अवतरित होने वाला ग्रन्थ क़ुरआन मजीद अक्षरशः सुरक्षित है और आप (सल्ल०) का जीवन एवं चरित्र भी पूर्णतयः सुरक्षित है।

5– संवाद का एक उद्देश्य इस्लाम का सही परिचय कराना, और इस सम्बंध से फैली हुई ग़लतफ़हमियों और दुर्भावनाओं को दूर करना भी है।

6– क़ौमी ज़िन्दगी में इसकी प्राप्ति, धर्म के नाम पर अनुचित घृणा और शत्रुता की समाप्ति, सांस्कृतिक आक्रमकता से धार्मिक समुदायों की सुरक्षा भी ऐसे संवाद के उद्देश्यों में सम्मिलित है। इसलिए एक मिले-जुले समाज में जहाँ विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों पर विश्वास करने वाले लोग रहते हों उनके मध्य इन्सानी भाईचारा और अधिकारों की अदायगी के साथ रहकर ही शान्ति एवं विकास की प्राप्ति सम्भव है।

इन कार्यक्रमों का एक ध्यान देने योग्य और दुखद पहलू भी है। वह यह कि उनके प्रतिभागियों में बुद्धजीवी और धार्मिक गुरू आमतौर से तीव्र स्वर में कहते हैं कि सारे धर्म सच्चे हैं। सभी अशान्ति एवं अतिवाद के विरोधी हैं। लेकिन मुट्ठी भर लोग धर्म के नाम पर रक्तपात कर रहे हैं, इसीलिए समस्त धर्म गुरूओं को आतंकवाद के विरुद्ध मैदान में आना चाहिये, बल्कि एक विशेष धर्म के धार्मिक गुरूओं एवं बुद्धजीवियों को अपने नवयुवकों को नियन्त्रण में रखना चाहिये। धार्मिक तथा जिहादी जुनून से उन्हें बचाना चाहिये।

मानों यह कहा जाता है कि दुनिया में आज अशान्ति, टकराव, अतिवाद, आतंकवाद तथा मानव अधिकारों के हनन के लिये धर्म ही अस्ल ज़िम्मेदार है। जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। हमारे देश तथा विश्व की दयनीय और गम्भीर परिस्थिति और विशेषकर आतंकवाद के पैदा होने वाले कारण बिल्कुल दूसरे हैं। उन कारणों को जब तक दूर नहीं किया जायेगा, उस समय तक यह परिस्थिति बदल नहीं सकती।

दूसरा दुखद पहलू यह है कि उपरोक्त कार्यक्रमों में ईश्वर द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन की खोज करने, विचार विमर्श और फैसला करके अपने जीवन में उसे उतारने का कोई जज़्बा या अभिरुचि वक्ताओं तथा श्रोताओं के अन्दर नहीं पायी जाती ।

गहन विचार की आवश्यकता है कि मानव निर्मित धर्मों और विचारधाराओं के द्वारा दुनिया अमन व शान्ति तथा न्याय एवं इन्साफ की प्राप्ति में विफल है। क्या ईश्वर को अपने बन्दों से दुश्मनी है ? क्या उसने इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों और बहुमूल्य मूल्यों की प्राप्ति के लिये कोई मार्गदर्शन और नियम इन्सानों को प्रदान नहीं किया ? क्या ईश्वर यह चाहता है कि उसकी सृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ सृष्टि इन्सान, अन्याय एवं अत्याचार, उपद्रव एवं फसाद, कत्ल व खून, झगड़ा व फ़साद के वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करे? ऐसा नहीं हो सकता। ईश्वर वास्तव में चाहता है कि उसके बन्दे खुश और सफल रहें। दुनिया अमन व

शान्ति और न्याय एवं इंसाफ़ का पालना बन जाये। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उसने जो सिद्धान्त और नियम इन्सान को प्रदान किये हैं उन पर अमल करके ही इन्सान सफल जीवन व्यतीत कर सकता है।

इन कार्यक्रमों में मुस्लिम बुद्धजीवियों और धार्मिक गुरुओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। उन्हें इस तरह के अवसरों पर बुद्धिमानी एवं प्रेम, दावती जज़्बे और दर्द और तपड़ के साथ इस्लाम का परिचय कराना चाहिये। इस्लाम की विशिष्टतायें विशेषरूप से उसके सम्पूर्ण जीवन प्रणाली होने, मात्र अकेला सत्य धर्म होने, जीवन की समस्याओं का समाधान करने वाला होने और परलोक में मुक्ति एवं नजात का ज़ामिन होने की हैसीयत से प्रस्तुत करना चाहिये। इस्लाम को मुसलमानों के क़ौमी या नस्ली धर्म के रूप में नहीं बल्कि ईश्वरीय धर्म के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये और यह बताना चाहिये कि वह समस्त मानव जाति के लिये है। इस्लाम की इस हैसीयत को भी स्पष्ट करना चाहिये कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये कल्याण एवं मुक्ति का साधन है। उन्हें सर्वधर्म सम्भाव की पुष्टि कदापि नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ईश्वर के यहां यह बहुत बड़ा जुर्म होगा। सर्वधर्म सम्भाव को स्वीकार करके और उसका अनुपालन कर इन्सान कभी सुख व शान्ति, सुकून व राहत और सांसारिक सफलता तथा पारलौकिक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

धार्मिक उदारता :–

''सभी धर्म समान हैं'' पर विश्वास करने वालों के

निकट धार्मिक उदारता के लिये ज़रूरी है कि समस्त धर्मों का सच्चा होना स्वीकार किया जाये। उनका विचार है कि किसी एक धर्म को सत्य क़रार देकर शेष धर्मों को सही न समझना वास्तव में धार्मिक उदारता के विरुद्ध है।

परन्तु उदारता का यह अर्थ सही नहीं है। उदारता का यह अर्थ नहीं है कि कोई किसी धर्म को बुद्धि एवं तर्क, तत्वदर्शिता एवं दूरदर्शिता के आधार पर सही न समझता हो, परन्तु मात्र दूसरों को खुश करने और उस धर्म के अनुयाइयों को नाराज़ न करने की खातिर उस धर्म को और सही मान ले। इसी प्रकार उसके निकट जो सत्य धर्म है उसको दूसरों के सामने एक सत्य धर्म के रूप में प्रस्तुत न करे, मात्र इसलिए कि दूसरे नाराज़ होंगे। यह कार्यशैली तो सत्य एवं असत्य या ग़लत और सही दोनों को एक ही सतेह पर ला कर खड़ा करता है। इसे किसी भी तर्क के आधार पर बुद्धि संगत और उचित कार्यशैली नहीं कहा जा सकता। इसमें सच्चाई की खोज करने और उसे पाने के बाद कल्याण और सफलता तथा मुक्ति और नजात के लिये अपनाने का का जज़्बा खत्म हो जाता है।

धार्मिक उदारता का सही अर्थ यह है कि आदमी अपने धर्म को सही और सच्चा मानने के बावजूद दूसरे धर्मों को सहन करे, यद्यपि वह उसको सही न समझता हो। उनके धार्मिक भावनाओं को ठेंस न पहुंचाये। उनके धार्मिक महापुरूषों और पूजा स्थलों का सम्मान करे। दलील और तर्क के आधार पर दूसरे धर्म के मानने वालों से समझने

और समझाने का सिलसिला जारी रखे, ताकि सत्यता स्पष्ट होकर सामने आये। परन्तु सत्य धर्म होने के दावे की बुनियाद पर दूसरे धर्मों के मानने वालों के साथ में लड़ाई-झगड़ा न करे।

उदारता का अर्थ यह भी है कि अपने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए धौंस, धांधली, ज़ोर व ज़बरदस्ती या लालच का रवैया न अपनाये। इंसानों से अनुचित घृणा की कोई अभियान न चलाये। प्रत्येक व्यक्ति का यह मौलिक अधिक स्वीकार करे कि वह जिस आस्था और विश्वास पर अपनी स्वेच्छा से चलना चाहे, उसे यह अधिकार एवं स्वतंत्रता प्राप्त हो। यह अधिकार तो ईश्वर ने प्रदान किया है, उसे किसी भी तरह से छीन लेने का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं है।

धर्म गुरूओं के मध्य उदारता का उपरोक्त अर्थ एवं भाव स्वीकार किया जाये तो धार्मिक टकराव और घृणा और सांस्कृतिक आक्रामकता उत्पन्न नहीं हो सकती। हम देखते है कि धर्म का नाम लेकर कुछ चालाक लोग सत्ता की लालच में धार्मिक समुदायों को आपस में लड़ाने की भरपूर कोशिश करते हैं। आमतौर पर लोग उनकी वास्तविकता से अवगत हैं और इस प्रकार की कोशिशों को को पसन्द नहीं करते हैं। हमारे देश में इन्सान आमतौर से प्यार व मुहब्बत, भाईचारा और अमन व शान्ति के साथ परस्पर मिलजुल कर रहना पसन्द करते हैं।

उदारता की इस्लामी धारणा प्रस्तुत करते हुये

मौलाना सै० अबुल आला मौदूदी रह० लिखते हैं–

''आमतौर से लोग इस ग़लत फ़हमी के शिकार है कि दस भिन्न-भिन्न विचार रखने वाले व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न और विपरीत विचारों को सही कहना ''उदारता'' हैं जबकि यह वास्तव में उदारता नहीं बल्कि पूर्णरूप से कपटाचार और दिखावा है। उदारता का अर्थ यह है कि जिन लोगों की आस्थायें और कर्म हमारे नज़दीक ग़लत हैं, उनको हम सहन करें। उनकी भावनाओं का आदर करके उन पर ऐसी आलोचना न करें जो उनको कष्ट पहुंचाने वाली हों और उन्हें उनके विश्वासों से हटाने या उनके अमल से रोकने के लिये ज़ोर-ज़बरदस्ती का तरीक़ा न अपनायें। इस प्रकार की सहनशीलता और इस तरीक़े से लोगों को विश्वास एवं कर्म की आजादी देना न केवल एक प्रशंसनीय कार्य है, बल्कि विभिन्न विचार रखने वाले समुदायों में सदभाव एवं शान्ति को बनाये रखने के लिये ज़रूरी है। लेकिन यदि हम स्वयं विश्वास रखने के बावजूद मात्र दूसरे लोगों को खुश करने के लिये उनकी विभिन्न आस्थाओं की पुष्टि करें और खुद एक विधान का पालन करते हुये दूसरे विभिन्न विधानों का अनुसरण करने वालों से कहें कि आप सब लोग सच्चे हैं, तो इस दिखावे की अभिव्यक्ति को किसी प्रकार उदारता नही कहा जा सकता। किसी कारण चुप रहने और जानबूझ कर झूठ बोलने में आखिर कुछ तो फ़र्क होना चाहिये। सही उदारता वह है जिसकी शिक्षा इस्लाम ने हमको दी है। हम से कहा

गया है कि ''वह लोग ईश्वर को छोड़कर जिन दूसरे उपास्यों को पुकारते हैं, उनको बुरा न कहो क्योंकि उसके उत्तर में नासमझी में अकारण वह ईश्वर को गालियां देंगे। हमने इसी प्रकार हर समुदाय के लिये उसके अपने कर्मों को प्रिय बना दिया है। फिर उन सबको अपने पालनहार की ओर वापस जाना है, वहां उनका पालनहार उन्हें बता देगा कि उन्होंने कैसे कर्म किये।

(सूरह अनआम-113)

यही वह उदारता है जो एक सत्यवादी, सत्यप्रिय और सद्बुद्धि रखने वाला व्यक्ति अपना सकता है। वह जिस विश्वास एवं धर्म को सही समझता है, उस पर कठोरता के साथ क़ायम रहेगा, अपने विश्वास एवं आस्था का साफ-साफ इज़हार और ऐलान करेगा, दूसरों को इस विश्वास एवं आस्था की ओर दावत भी देगा परन्तु किसी का दिल न दुखायेगा। किसी को अपशब्द न कहेगा, किसी की आस्था पर हमला न करेगा, किसी की उपासना और कर्म में बाधा नहीं डालेगा, किसी को ज़बरदस्ती अपने धर्म एवं तरीके पर लाने का प्रयास नहीं करेगा। शेष सत्य को सत्य जानते हुये सत्य न कहना या असत्य को असत्य समझते हुये सत्य कह देना, कदापि किसी सत्यवादी व्यक्ति का कार्य नहीं हो सकता और विशेषकर लोगों को खुश करने के लिये तो ऐसा करना अत्यन्त घिनौने प्रकार की

चापलूसी है। ऐसी चापलूसी मात्र नैतिक रूप से ही तुच्छ नहीं बल्कि उस उद्देश्य में भी सफल नहीं होती, जिसके लिए इन्सान अपने आपको इस निचले स्तर तक गिराता है''।

(तफ़हीमात–जिल्द 1– पेज–114–117)